हिंदी के कवि और काव्य

बाहर
और
परे

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली-६ पटना-६

इर्शी फ्रीड

Hindi translation of Jir̆i′ Fried's Czech novel
C̆ASOVA′ TISEN by Nirmal Verma

इर्शी फ्रीद के चेक उपन्यास—चासोवा तिसिग् का निर्मल वर्मा द्वारा
हिन्दी अनुवाद

प्रथम संस्करण : १९६८

मूल्य : ५.००

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. दिल्ली-६
मुद्रक : इंडियन आर्ट प्रेस, नई दिल्ली-४८
आवरण : रिफ़ॉर्मा स्टुडियो, दिल्ली-६

बा | ह | र | औ | र | प | रे

१

मैं दीवार के पास लेटा था, अतः सबसे शुरू में मुझे ज़ुज़ाना के घर से गुज़रकर नीचे उतरना पड़ा। टेलीफोन की घंटी बराबर बज रही थी, अपनी तीखी आवाज़ से अँधेरे को भेदती हुई। ज़ुज़ाना भी उठ गयी। "क्या मज़ाक है?" उसने कुछ इस तरह झुँझलाकर कहा मानो यह उसका अपना ही घर हो।

आधी रात का वक्त था दो या, तीन बजे होंगे। हम एक बजे तक जागते रहे थे। मुझे याद है क्योंकि आखिरी सिगरेट जलाते समय मैंने घड़ी देखी थी। ट्रंक-कॉल आयी थी। टेलीफोन-एक्सचेंज की लड़की ने मेरा नम्बर पूछा था। मुझे काफी झल्लाहट हुई थी कि मेरे जैसे जाने-माने आदमी का नाम उसके लिए काफी नहीं है। मैंने उसे अपना नम्बर बता दिया। किन्तु जब मैंने उससे टेलीफोन करने वाले का नाम पूछा, तो सहसा टेलीफोन खामोश हो गया था।

जुज़ा ने बत्ती जलायी और घड़ी की ओर हाथ बढ़ाया। बिजली का प्रकाश मेरी आँखों को चकाचौंध कर गया।

"कौन था?"

"पता नहीं।"

"तीन बजने में बीस मिनट। इस वक्त तुम्हें कौन बुला सकता है?"

"मैंने कहा न, मुझे नहीं मालूम। ट्रंककॉल थी। मेहरबानी करके बत्ती बुझा दो।"

"इसमें इतना झुँझलाने की क्या बात है?"

वह उस क्षण मुझे काफी भद्दी और बूढ़ी जान पड़ी। चेहरे पर लाल धब्बे उभर आये थे और माथे पर बालों के घुमट्टे झूल रहे थे। टेलीफोन के भीतर अजीबो-गरीब, मशीनी आवाज़ें गूंज रही थीं। मेज़ पर मैंने सिगरेटों के पैकेट को ढूंढ़ने की असफल कोशिश की। मेरा हाथ काँप रहा था। मुझे डर था कि कहीं किसी ने ज़ाहोरी से फोन न किया हो, हालाँकि मुझे मालूम था कि उसके अलावा मुझे इस घड़ी कहीं और से फोन नहीं आने वाला है। मुझे पहले से ही डर लग गया था, क्योंकि मेरे घर वाले आज भी यह सोचते हैं कि केवल दु:ख-आपदा के मौकों पर ही टेलीफोन-जैसे यंत्र का इस्तेमाल किया जाता है। उस क्षण मुझे टेलीफोन-एक्सचेंज की लड़की का स्वर बहुत साफ सुनायी दिया, "जाहोरी! हाँ, यह प्राग है।"

जरूर घर में कुछ हुआ है।

दूसरे क्षण ही फोन में एलबर्ट का स्वर सुनायी दिया। मैंने बड़े जोश-खरोश और लगभग-प्रसन्न मुदित स्वर में उसका अभिवादन किया, मानो अपने इस हल्के-फुल्के भाव से मैं किसी-न-किसी तरह स्थिति को सँभाल लूंगा।

"तुम सो रहे थे?" एलबर्ट ने कहा, "भाई, नाराज़ मत हो, इतनी रात में तुम्हें फोन कर रहा हूँ।"

"छिः, इसमें नाराज़ होने की क्या बात है?"

यह स्पष्ट था कि उसे समझ में नहीं आ रहा था कि कैसे बात शुरू करे। वह बड़े गडमड ढंग से मुझे बताने लगा कि 'पब' का मालिक पिखा सो रहा था, अतः वह वहाँ से फोन नहीं कर सका। मैंने सोचा, किसी तरह साहस बटोरकर उससे कोई सीधा सवाल पूछ डालूँ ताकि वह मुझे कुछ बता सके, लेकिन मेरी जुबान नहीं खुली। न जाने एलबर्ट किसका नाम लेगा? रोज़ी? माँ? व्लास्ता?

"आपकी बातचीत जारी है?" एक्सचेंज की लड़की ने दखल दिया।

"हाँ, जारी है।" एलबर्ट ने उत्तर दिया। फिर सहसा थूक निगलकर उसने गहरी पीड़ा से भीगे स्वर में कहा, "सुनते हो, भयानक घटना हुई है···तुम्हारी माँ नहीं रहीं।"

जुज़ा बिस्तर के सामने खड़ी थी। उसने मेरी नाइट-शर्ट पहन रखी थी, जो मुश्किल से उसकी जाँघों तक आती थी। मुझे लगा जैसे मेरी छाती की पसलियाँ सख्त उँगलियों में बदल गई हैं, जिन्होंने मेरे दिल को पकड़ लिया है। एलबर्ट विस्तार से सब-कुछ बता रहा था। दुपहर के समय माँ ने दुकान खोली थी। चार बजे के करीब जब बूढ़ा कूस दूध लेने आया, तो वह काउण्टर पर सिर टिकाए बेहोश पड़ी थी। समय हाथ से निकल चुका था। बड़े डॉक्टर ने बताया कि पिछले कई दिनों से उनके दिल के अन्दरूनी मेम्बरेन सूज गये थे। आधी रात को, बारह बजकर बारह मिनट पर उन्होंने आखिरी साँस ली।

जुज़ा धीमे कदमों से मेज के पास आयी। मैंने सिगरेट की ओर इशारा किया। उसने दो सिगरेटें सुलगायीं, जैसे वह अक्सर बिस्तर पर लेटे हुए जलाती थी और एक मेरे मुँह में दबा दी। मेरी आँखें आँसुओं से भर आयी थीं और टेलीफोन में 'हे ईश्वर, हे ईश्वर!' कहने के अलावा मैं कुछ और नहीं कह पा रहा था। मैंने एलबर्ट से कहा कि मैं दूसरे दिन शाम को चल पड़ूँगा। उसके बाद फिर टेलीफोन की घंटी सुनायी दी। एक्सचेंज की लड़की ने पूछा, "खत्म?"

"हाँ, खत्म।"

मैं खाली-सा हो गया था, मानो किसी ने मेरे भीतर की अंतड़ियाँ निकाल डाली हों। काठ के पुतले की तरह सिर हिलाता हुआ मैं बार-बार दोहरा रहा था, "खत्म, खत्म !"

जब मैं बाईस वर्ष का था, हृदय-रोग के कारण मुझे अस्पताल जाना पड़ा था। आज भी मुझे सही-सही विश्वास नहीं होता कि मैं स्वस्थ हूँ और अक्सर अँगूठे से अपनी नब्ज़ देख लेता हूँ। बुधवार, शनिवार और इतवार के दिन माँ मेरे बिस्तर के पास आकर बैठ जाती थीं, महीनों मैं बिना हिले-डुले अस्पताल के कमरे में पड़ा रहा था। उन दिनों जब कभी मृत्यु का भय मुझे जकड़ लेता, मुझे लगता कि यदि दुनिया में कोई व्यक्ति मेरे लिए आँसू बहायेगा, तो वह सिर्फ माँ है।

मेरी बीमारी से ही वह मर गयीं। मुझे लगा मानो उन दोनों के बीच किसी प्रकार का कोई अज्ञात सम्बन्ध हो।

"माँ के बारे में था ?" ज़ुज़ा ने सतर्क-भाव से पूछा। वह लिखने की मेज़ के किनारे खड़ी थी। बिजली के धुँधले आलोक में उसकी सफेद लम्बी टाँगों का रंग हरा-सा हो आया था। मेरी आँखें खिड़की के ठंडे चमकते शीशों पर ठहर गयीं। मेरा एपार्टमेंट वर्शोवित्स के ऊपर था और वहाँ से नीचे घाटी में बिखरी कुछ-कुछ उत्सुक-सी रोशनियाँ दिखाई दे जाती थीं। इस साल पतझड़ के शुरू में माँ ने मुझे एक चिट्ठी भेजी थी। चिट्ठी में लिखा था कि उनकी सेहत ठीक नहीं रहती, खाँसी आती है और रात को सो नहीं पातीं। "मैं छत को देखती रहती हूँ और रात एक समुद्र-सी जान पड़ती है।" उनके इस वाक्य को मैं मृत्यु तक नहीं भूल सकूँगा। उनकी इस चिट्ठी ने मुझे बहुत बेचैन-सा कर दिया था और यद्यपि उसमें मुझे बुलाने का कोई संकेत नहीं था, मैं अच्छी तरह जान गया था कि उनकी हालत काफी खराब है और वह मुझे अपने पास बुलाना चाहती हैं। मैं बहुत भयभीत-सा हो गया था और मुझे झुँझलाहट भी हुई थी कि वह नाहक मेरे चैन में खलल डालती रहती हैं। क्यों नहीं उस बार मैं घर चला गया ? मैं परेशानी मोल लेना नहीं चाहता था। ज़िन्दगी जीने का

मेरा यह भयानक, स्वार्थी ढर्रा हमेशा से रहा है। कभी-कभी मुझे लगता है कि मैं हमेशा ज़िन्दगी से कतराता रहा हूँ।

"हाय बेचारा !" ज़ुज़ा ने कहा। वह कुर्सी के हत्थे पर बैठी थी और उसने अपनी समूची देह से मुझे आलिंगन में बाँध लिया था। ज़ुज़ा के चौड़े मांसल हाथ खास अपने ढंग से खूबसूरत हैं और उनके लम्बे नाखूनों में एक अजीब-सा आकर्षण है। "तुम हमेशा दस्ताने पहने रखा करो।" जोसेफ ने एक बार उससे कहा था। "क्यों ?" "तुम्हारे हाथ काफी नंगे-से दिखाई देते हैं।" ज़ुज़ा का नंगा हाथ मेरे सिर और कानों को सहला रहा था। ज़ाहिर था, वह मेरे प्रति हमदर्दी दिखाने, मुझे ढाढस बँधाने की कोशिश कर रही थी, किंतु उसके स्पर्श से मेरे बदन में परिचित-पहचानी-सी बिजली की चिंगारियाँ उठने लगीं। सहसा मुझे हर चीज घिनौनी-सी जान पड़ी। उसका सहलाता हुआ हाथ, उसका नंगापन, मेरा यह अहसास कि किस तरह पायजामे के पीछे उसकी देह घुमट-चमक रही है। सब-कुछ मुझे असह्य-सा जान पड़ा। मैं ज़ुज़ा से प्रेम नहीं करता। उसे अपने घर जाने के लिए मैंने क्यों नहीं कह दिया ? माँ की मृत्यु आधी रात के कुछ देर बाद हुई थी। उस वक्त मैं गुसलखाने में खड़ा था, जहाँ बिजली का प्रकाश छनता हुआ गिर रहा था। ज़ुज़ा मेरी ओर पीठ मोड़कर खड़ी थी और तौलिये से अपनी देह रगड़ रही थी। जब उसने मुड़कर मेरी ओर देखा, तो वह खुशी से चीख उठी थी, "अरे, तुम पायजामे में बहुत अच्छे लगते हो !"

मैं सिगरेट पीने के लिए उठ खड़ा हुआ और फिर मेज़ के सामने रखी कुर्सी के पास दोबारा वापस नहीं आया। खिड़की के बाहर सर्द अँधेरा फैला था और उसमें बालकनी की रेलिंग और गमले में पड़ा सूखा पौधा काले-से दीख रहे थे। सामने छत पर एक छोटी-सी चिमनी सिर उठाए खड़ी थी जिसे देखकर मुझे बरबस इंगलैंड के गाँव याद हो आते थे। सारी दुनिया निस्तब्ध थी—अपलक घूरती हुई।

"क्या बहुत दिनों से बीमार थीं ?" ज़ुज़ा ने दबे, सहानुभूतिपूर्ण स्वर में पूछा।

"ज़िन्दगी में कभी बीमार नहीं पड़ीं।"

"फिर क्या हुआ? कोई स्ट्रोक तो नहीं?"

"हाँ शायद।"

"तुम उन्हें बहुत चाहते थे—क्यों ?"

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। क्या तुम चुप नहीं रह सकतीं? क्या हमदर्दी दिखाना बहुत ज़रूरी है? उसके प्रति मेरा दिल आक्रोश से भर उठा। वह कपड़े पहनकर घर क्यों नहीं चली जाती? काश, वह अपने लिए टैक्सी बुला सकती! क्या उसे इतनी-सी बात समझ में नहीं आती कि मुझे अकेला छोड़कर वह मेरी मदद कर सकती है? क्या उसे महसूस नहीं होता कि मैं उसकी उपस्थिति सहन नहीं कर सकता?

ज़ुज़ा ने अपने नंगे पैर कालीन पर टिका लिये। उसके स्पर्श की आशंका से मेरी देह में झुरझुरी-सी दौड़ गई। उसने बड़ी कोमलता से अपना एक हाथ मेरे कन्धे पर रखा और दूसरे हाथ से मेरा चेहरा उठा दिया ताकि मैं ज़बरदस्ती उसकी ओर देख सकूँ। उसकी आँखों में आँसू चमक रहे थे।

"डार्लिंग…मुझे सचमुच बहुत अफ़सोस है।"

मैं अनमना-सा होकर उसकी पीठ सहलाने लगा।

"अब सो जाओ," मैंने कहा, "तुम्हें सर्दी लग जायेगी।"

"तुम भी आ जाओ यहाँ, सचमुच बहुत सर्दी है।" उसने कहा।

उसने मेरे शब्दों का दूसरा अर्थ ले लिया था, यह सोचकर मैं हक्का-बक्का-सा रह गया। उसने मेरा हाथ पकड़ लिया था।

"मुझे अकेला रहने दो।" मैंने चीखकर कहा, किन्तु दूसरे ही क्षण मैंने अपने पर काबू पा लिया।

"मैं सो नहीं सकूँगा। सुनो, कुछ देर के लिए बाहर घूम आता हूँ। आशा है, तुम नाराज़ नहीं होगी। इस वक्त मैं अकेला रहना चाहता हूँ।"

मैं जल्दी-जल्दी कपड़े पहनने लगा। जुज़ा खफा हो गई थी। रज़ाई ढककर उसने अपना चेहरा दीवार की ओर मोड़ लिया था।

मैंने एक शब्द भी नहीं कहा और तेज़ कदमों से घर के बाहर चला आया।

२

मैं निरुद्देश्य चलता रहा। पीड़ित आदमी एक ऐक्टर की तरह होता है। मंच पर अपना पार्ट खत्म कर देने के बाद जब वह वापस लौटता है, तो उसे अजीब-सा अकेलापन महसूस होता है। उसके बिना भी नाटक का शेष भाग अपनी निर्भय गति में चलता रहता है, सिर्फ उस ऐक्टर के लिए उसका कोई अर्थ नहीं रह जाता। मैं तेज़ कदमों से चल रहा था, हर गली मुझे तंग और सँकरी-सी जान पड़ रही थी। मैं जल्द-से-जल्द इन गलियों के अन्तिम छोर तक पहुँच जाना चाहता था। मुझे आशा थी कि प्राग में कहीं-न-कहीं ऐसा कोना जरूर होगा, जहाँ मैं कुछ बेहतर महसूस कर सकूँगा। शहर का यह इलाका, वर्शोवित्से, सचमुच भयानक था। बाहर कड़ाके की सर्दी थी। फुटपाथ के नीचे गन्दी बर्फ के टुकड़े कूड़ागाड़ी की प्रतीक्षा में पड़े थे। अब सोचता हूँ तो लगता है कि मैं चलते हुए बराबर माँ को बुला रहा था। मैंने आँखें मूँद रखी थीं ताकि माँ का चेहरा ठीक-ठीक याद कर सकूँ। माँ की हज़ारों भंगिमाएँ मेरी आँखों के सामने गुज़री

थीं, किन्तु उस क्षण स्मृति की अजीव भूल-भुलैयां से केवल एक तस्वीर बार-बार बाहर आ जाती थी। उन्होंने अपना सिर तनिक कंधों की तरफ़ झुका रखा था··· कुछ-कुछ वैसे ही, जब वह गर्मियों की किसी शाम को उदास भाव से धुंधली खिड़की पर अपना सिर झुका लेती थीं। मेरा ध्यान बार-बार जुज़ा की तरफ भी चला जाता था। मुझे उस पर काफी क्रोध आ रहा था कि उसी की वजह से मैं घर वापस नहीं जा सकता और उसी के कारण मेरा ध्यान माँ पर केन्द्रित न होकर अलग-अलग चीज़ों में भटक जाता है।

मुझे याद नहीं, मैं कैसे घूमता-भटकता व्लानीस्का गली में चला आया। शायद अचेतन, आकारहीन स्मृति का कोई खिंचाव रहा होगा या महज़ कोरा संयोग···सहसा मैंने अपने को एक छोटे-से मकान के सामने खड़ा पाया। लड़ाई के दिनों में हमारा परिवार उसी घर में रहता था। बरसों से मैं इस गली में नहीं आया था। मकान की भद्दी पीली इमारत बहुत पुरानी और जर्जरित-सी लग रही थी। जहाँ कभी कार्निस थे, वहाँ अब महज़ टूटी-फूटी ईंटें बाहर की तरफ झाँक रही थीं। श्री हरादेस्की की दुकान पर अब प्रामेन (PRAMEN) का बोर्ड लगा था और ड्राई-क्लीनिंग की दुकान 'एजीटेशन-सेंटर' में बदल गई थी।

मैंने गली पार की और मकान की धुंधली, चौकोर खिड़कियों को देखने लगा। आज चौदह दिन बाद यह लिखते हुए मुझे उस घर से सम्बन्धित सब पुरानी घटनाएँ याद हो आयी हैं। जब हमारे शहर जाहोरी पर जर्मनों का कब्जा हुआ था, विक्टर वेशिन्स्की के ट्रक में लदकर हम इस मकान में आये थे। नीचे ड्राईक्लीनिंग की दुकान से एक मीठी-सी गन्ध सारे घर में तिरती रहती थी। अँधेरी सीढ़ियों पर सैकड़ों छछूँदर रेंगते रहते थे, जो अक्सर पैरों के नीचे रपट जाते थे। माँ बेचारी खटमलों से परेशान हो जातीं जो पलंगों में, तस्वीरों के फ्रेमों के भीतर, कुर्सियों में, लकड़ी के मर्तबानों के पीछे छिपे रहते थे। मकान की चौथी मंज़िल में चापेक नाम के एक फोटोग्राफर रहा करते थे, जो अपनी पत्नी को हरदम

सताया करते थे और कभी-कभी उसे नंगा करके ठण्डे, बर्फीले गुसलखाने में बन्द कर देते थे। पिताजी प्राग आने पर दिन-पर-दिन सूखते गये। घर छूटने का वियोग उन्हें घुन की तरह खाने लगा। वह उस पुराने पेड़ की तरह थे जिसे अपनी जमीन से उखाड़कर किसी पराई जगह लाकर फेंक दिया गया हो। मैं उन दिनों के बारे में भी बहुत-कुछ कहना चाहता हूँ जब मैंने माँ के साथ मिलकर गली में बेरीकेड लगाये थे। बन्दूक की गोलियों के डर के मारे माँ दिन के समय ऊपर मकान में नहीं जाती थीं, किन्तु रात के नौ बजते ही वह निडर होकर अपने कमरे में चली जाती थीं। वह सोचती थीं कि रात सोने के लिए है, और बिस्तर पर सोते हुए कोई उनका बाल भी बाँका नहीं कर सकता। मैं बहुत-कुछ बताना चाहता हूँ, अभी, इस क्षण, किन्तु उस रात की घटनाएँ बार-बार मुझे भटका देती हैं और यद्यपि मैं कोई अनुभवी लेखक नहीं हूँ, फिर भी मुझे लगता है उन पुरानी स्मृतियों को बताने का उचित समय और स्थान कोई दूसरा है··· या नहीं।

उस रात मैं किसी खास एक चीज़ के बारे में नहीं सोच रहा था। सब चीज़ें गड़बड़-सी होकर मेरे भीतर एक कातर-प्रवाह की तरह बही जा रही थीं। शायद वह काल था—उसकी गति, उसका प्रवाह। उन पुराने स्थानों को देखकर, जहाँ कभी माँ रहा करती थीं, पहली बार मुझे पूरी भयंकरता से आभास हुआ कि अब वह जीवित नहीं है। वह मकान अब भी पूर्ववत् खड़ा था। पराया मकान, जिसकी खिड़कियों के पीछे पराए लोग सो रहे थे। तेरह वर्ष पहले वह इस मकान को छोड़कर चली गयी थीं··· और अब वह चली गयी थीं, दुनिया के सब मकानों को छोड़कर। अब वह कहीं नहीं हैं···सिर्फ मुझमें, रोज़ी और एलबर्ट में वह एक छाया की तरह जीवित रहेंगी और हमारे साथ वह छाया भी खत्म हो जायेगी।

मुझे वह पदचाप सिर्फ अन्तिम क्षण में सुनाई दी थी। सन्तरी मुझसे छोटा था—लाल चेहरा और तगड़ी देह। मेरे पास से गुज़रते हुए

उसने चाल धीमी नहीं की, किन्तु सिर पीछे मोड़कर उसने सन्दिग्ध दृष्टि से मेरी ओर देखा था। मैं चौंक गया। मेरा दिल तेज़ी से धड़कने लगा था। इतनी सुबह अगर कोई आदमी पेड़ का सहारा लेकर सामने वाले मकान को देख रहा हो, तो हर सन्तरी को ज़रूर कुछ-न-कुछ दाल में काला दिखाई देगा। उसके जाते ही मैं हड़बड़ा कर पेड़ से अलग हो गया और विपरीत दिशा में चलने लगा। गली के नुक्कड़ पर पहुँचकर मैंने पीछे देखा—सन्तरी फुटपाथ के किनारे खड़ा होकर मेरी ओर देख रहा था। मैं यह सोचकर कुछ देर वहाँ ठिठका खड़ा रहा कि शायद वह लौटकर वापस आयेगा। मैं कुछ इस बुरी तरह घबरा गया था, मानो किसी ने मुझे रंगे हाथों पकड़ लिया हो। आखिर कुछ सतर्क होकर मैंने गली की ओर देखा··· वह अब सूनी थी।

मैं कहीं-न-कहीं अपने को अपराधी पाता हूँ। लोगों की निगाहों को देखकर मुझे शक होता है, मानो वे मुझ पर हँस रहे हों। मुझे लगता है, मानो वे मेरी नस-नस पहचानते हों और उनकी आँखों में मेरे प्रति कोई गहरा आरोप छिपा है। अधिकांश लोगों के सामने मैं अपने को बहुत घाटे में पाता हूँ। जिस नाई के पास मैं जाता हूँ, वह प्रायः लोगा की ऊपरी वेश-भूषा को देखकर उनके प्रति अपनी शालीनता तय करता है। किन्तु उसे भी मेरे बढ़िया सूट में ज्यादा दिलचस्पी नहीं है। वह मुझसे सिर्फ कुछ नपी-तुली बातें करता है, मानो उसे संदेह हो कि मैं भेष बदलकर उसके सामने आया हूँ। उसकी ग़लतफ़हमी को दूर करने के लिए मैं जाने से पहले उसे काफ़ी भारी टिप देता हूँ, किन्तु मुझे लगता है जैसे मैं उसे घूस दे रहा हूँ और उसके सामने मेरी पोल-पट्टी पहले से भी ज्यादा खुल गई है। मैंने आज तक कभी कानून के विरुद्ध कोई काम नहीं किया, किन्तु फिर भी मैं अपनी इस अपराध-भावना से मुक्ति नहीं पा सकता। मुझे लगता है, अगर एक दिन वे अचानक मुझे गिरफ्तार कर लें, तो मुझे कुछ ज्यादा आश्चर्य नहीं होगा।

मैं इस बार दूसरी पटरी से गुज़रकर दोबारा उस पुराने मकान के सामने चला आया। दरवाज़े पर भारी पीतल के हैंडिल पर कुछ वैसी ही

सताया करते थे और कभी-कभी उसे नंगा करके ठण्डे, बर्फीले गुसलखाने में बन्द कर देते थे। पिताजी प्राग आने पर दिन-पर-दिन सूखते गये। घर छूटने का वियोग उन्हें घुन की तरह खाने लगा। वह उस पुराने पेड़ की तरह थे जिसे अपनी ज़मीन से उखाड़कर किसी पराई जगह लाकर फेंक दिया गया हो। मैं उन दिनों के बारे में भी बहुत-कुछ कहना चाहता हूँ जब मैंने माँ के साथ मिलकर गली में बेरीकेड लगाये थे। बन्दूक की गोलियों के डर के मारे माँ दिन के समय ऊपर मकान में नहीं जाती थीं, किन्तु रात के नौ बजते ही वह निडर होकर अपने कमरे में चली जाती थीं। वह सोचती थीं कि रात सोने के लिए है, और बिस्तर पर सोते हुए कोई उनका बाल भी बाँका नहीं कर सकता। मैं बहुत-कुछ बताना चाहता हूँ, अभी, इस क्षण, किन्तु उस रात की घटनाएँ बार-बार मुझे भटका देती हैं और यद्यपि मैं कोई अनुभवी लेखक नहीं हूँ, फिर भी मुझे लगता है उन पुरानी स्मृतियों को बताने का उचित समय और स्थान कोई दूसरा है··· या नहीं।

उस रात मैं किसी खास एक चीज़ के बारे में नहीं सोच रहा था। सब चीजें गड़बड़-सी होकर मेरे भीतर एक कातर-प्रवाह की तरह बही जा रही थीं। शायद वह काल था—उसकी गति, उसका प्रवाह। उन पुराने स्थानों को देखकर, जहाँ कभी माँ रहा करती थीं, पहली बार मुझे पूरी भयंकरता से आभास हुआ कि अब वह जीवित नहीं है। वह मकान अब भी पूर्ववत् खड़ा था। पराया मकान, जिसकी खिड़कियों के पीछे पराए लोग सो रहे थे। तेरह वर्ष पहले वह इस मकान को छोड़कर चली गयी थीं··· और अब वह चली गयी थीं, दुनिया के सब मकानों को छोड़कर। अब वह कहीं नहीं हैं···सिर्फ मुझमें, रोज़ी और एलबर्ट में वह एक छाया की तरह जीवित रहेंगी और हमारे साथ वह छाया भी खत्म हो जायेगी।

मुझे वह पदचाप सिर्फ अन्तिम क्षण में सुनाई दी थी। सन्तरी मुझसे छोटा था—लाल चेहरा और तगड़ी देह। मेरे पास से गुज़रते हुए

उसने चाल धीमी नहीं की, किन्तु सिर पीछे मोड़कर उसने सन्दिग्ध दृष्टि से मेरी ओर देखा था। मैं चौंक गया। मेरा दिल तेज़ी से धड़कने लगा था। इतनी सुबह अगर कोई आदमी पेड़ का सहारा लेकर सामने वाले मकान को देख रहा हो, तो हर सन्तरी को ज़रूर कुछ-न-कुछ दाल में काला दिखाई देगा। उसके जाते ही मैं हड़बड़ा कर पेड़ से अलग हो गया और विपरीत दिशा में चलने लगा। गली के नुक्कड़ पर पहुँचकर मैंने पीछे देखा—सन्तरी फुटपाथ के किनारे खड़ा होकर मेरी ओर देख रहा था। मैं यह सोचकर कुछ देर वहाँ ठिठका खड़ा रहा कि शायद वह लौटकर वापस आयेगा। मैं कुछ इस बुरी तरह घबरा गया था, मानो किसी ने मुझे रंगे हाथों पकड़ लिया हो। आखिर कुछ सतर्क होकर मैंने गली की ओर देखा··· वह अब सूनी थी।

मैं कहीं-न-कहीं अपने को अपराधी पाता हूँ। लोगों की निगाहों को देखकर मुझे शक होता है, मानो वे मुझ पर हँस रहे हों। मुझे लगता है, मानो वे मेरी नस-नस पहचानते हों और उनकी आँखों में मेरे प्रति कोई गहरा आरोप छिपा है। अधिकांश लोगों के सामने मैं अपने को बहुत घाटे में पाता हूँ। जिस नाई के पास मैं जाता हूँ, वह प्रायः लोगा की ऊपरी वेश-भूषा को देखकर उनके प्रति अपनी शालीनता तय करता है। किन्तु उसे भी मेरे बढ़िया सूट में ज्यादा दिलचस्पी नहीं है। वह मुझसे सिर्फ कुछ नपी-तुली बातें करता है, मानो उसे संदेह हो कि मैं भेष बदलकर उसके सामने आया हूँ। उसकी ग़लतफ़हमी को दूर करने के लिए मैं जाने से पहले उसे काफ़ी भारी टिप देता हूँ, किन्तु मुझे लगता है जैसे मैं उसे घूस दे रहा हूँ और उसके सामने मेरी पोल-पट्टी पहले से भी ज्यादा खुल गई है। मैंने आज तक कभी कानून के विरुद्ध कोई काम नहीं किया, किन्तु फिर भी मैं अपनी इस अपराध-भावना से मुक्ति नहीं पा सकता। मुझे लगता है, अगर एक दिन वे अचानक मुझे गिरफ्तार कर लें, तो मुझे कुछ ज्यादा आश्चर्य नहीं होगा।

मैं इस बार दूसरी पटरी से गुज़रकर दोबारा उस पुराने मकान के सामने चला आया। दरवाज़े पर भारी पीतल के हैंडिल पर कुछ वैसी ही

मटियाली चमक थी, जो प्राय: उन चीज़ों, औज़ारों या हैंडिलों पर आ जाती हैं, जिन्हें लोग अक्सर छूते हैं। वह लड़ाई का ज़माना था। मेरी आँखों के सामने माँ का वह चेहरा घूम गया जब वह काम से वापस घर लौटती थीं। वह काला कोट पहनती थीं और सिर पर स्कार्फ बँधा रहता था। उनकी पीठ कैनवस के थैलों के बोझ से झुकी रहती थी···उन थैलों में रादलित्से डेरी का कोयला भरा रहता था जिसे वह हर शाम चुराकर घर लाती थीं। दरवाज़े के सामने, जिस जगह मैं खड़ा था, वह भी ऐन उसी जगह आकर खड़ी हो जाती थीं, एक क्षण के लिए दोनों थैले एक हाथ में पकड़ लेतीं ताकि दूसरे हाथ से दरवाजा खोल सकें। न जाने कितनी बार उन्होंने अपने हाथ से पीतल के इस हैंडिल को पकड़ा होगा? पाँच सौ बार हज़ार बार? मैंने चारों ओर निगाहें दौड़ाईं और फिर अपनी अँगुलियों के पोरों से उस हैंडिल को सहलाने लगा। किन्तु फिर सहसा मुझे खयाल आया कि कहीं कानून के रखवाले सन्तरी की निगाहें मुझ पर न टिकी हों और मैं तेज़ी से भागने लगा। मेरे मस्तिष्क में चन्द छिटपुट वाक्य भिनभिनाने लगे जो मैं सन्तरी से कहूँगा, अगर वह मुझे बीच रास्ते में रोक लेने का दुस्साहस करता है। मैं उससे झगड़ पड़ूँगा क्योंकि उसे मुझ पर संदेह करने का कोई अधिकार नहीं है।

३

मैं टैक्सी में बैठ गया। ड्राइवर ने मुझे कुछ इस तरह देखा मानो मैं नशे में धुत होकर घर लौट रहा हूँ। जब मैं घर से बाहर निकला था, मुझे अपनी पीड़ा असह्य-सी जान पड़ी थी मानो सिर से लेकर पैरों की अँगुलियों तक देह की हर हड्डी मेरे भीतर कांटे की तरह चुभ रही हो। किन्तु अब पीड़ा नहीं थी···सिर्फ उदासी और हल्की-सी संजीदगी थी··· घर की याद की तरह खामोश। घर में घुसते ही मैंने जूते उतार दिये। जुजा वैसे ही दीवार की ओर मुंह मोड़कर सो रही थी···या शायद सोने का बहाना कर रही थी।

जुजा उन औरतों में से है, जिनकी मैं कतई परवाह नहीं करता, किन्तु जो बराबर मेरी ज़िन्दगी में आती रही हैं। उससे मेरी जान-पहचान दो महीनों से अधिक नहीं है। "यार, कभी हमारे यहाँ लड़कियों से गपशप करने आओ, वरना वे समझने लगेंगी कि तुम किसी एक के चंगुल में फँस

गये हो ?" उस दिन किसी ने मुझसे यह बात क्लब में कहथी थी। मैंने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और एक दिन मैं रैखल को साथ लेकर ट्रांन्सपोर्ट कर्मचारी केन्द्र चला आया था। उस दिन वहाँ औरतों का विशेष टूर्नामेंट था। शतरंज की सब मेजें खाली पड़ी थीं··· सिर्फ एक मेज के इर्द-गिर्द भीड़ जमा थी।

"वाह···कमाल है ! ज़रा यहाँ आकर देखो ! उसने बेचारी के छक्के छुड़ा दिये हैं ?" एक छोटे कद की तुर्की लड़की बड़े जोश में बोल रही थी। वह सिगरेट पीती हुई भीड़ से बाहर आती थी और फिर उतनी ही तेज़ी से भीतर चली जाती थी। जिस बेचारी के 'छक्के छुड़ा दिये' गये थे, उसका नाम ईवा था। वह एक बिल्कुल अजनबी लड़की के साथ शतरंज खेल रही थी। उसने शायद हाल में ही अपने बालों का स्टाइल बदल लिया था और उसमें उसका चेहरा-मुहरा हूबहू ईरानी लड़कियों का-सा जान पड़ता था। मैंने मुस्कराते हुए उसका अभिवादन किया, किन्तु जवाब देने के बजाय ईवा ने मुँह सिकोड़ लिया और सिगरेट लेने के लिए हाथ बढ़ा दिया। वह हारने ही वाली थी···मैं भी जी-जान से उसकी हार के लिए प्रार्थना कर रहा था। वह भीतर-ही-भीतर कितना जल-भुन रही है, इसका अनुमान मैं अच्छी तरह लगा सकता था। शतरंज की दक्ष खिलाड़ी होने के नाते उसे अपने पर बहुत अभिमान था···वह यहाँ दूसरों को सिर्फ यह जतलाने आयी थी कि ग़रीबों के बीच वह एक अभिजात डेमोक्रेट है। उसकी आँखों में एक सर्वज्ञाती, उदारता-भरी थकान-सी थी जो सर्फ आत्मकथित 'जीनियसों' में पायी जाती है और जिसकी कल्पना बेचारे, लुटे-पिटे-बेवकूफ़ लोग कभी नहीं कर सकते। बहुत मिन्नत-आरजू के बाद वह एक अजनबी, बेवकूफ़ खिलाड़ी के साथ शतरंज खेलने के लिये राज़ी हुई थी और अब इस अजनबी, बेवकूफ़ खिलाड़ी ने ही बड़ी क्रूरता से उसके सजीले पंख नोच-कचोट डाले थे।

शतरंज की उस अज्ञात खिलाड़िन की आँखें बाज़ी पर लगी थीं। वह बराबर अपने होंठों को, घोड़ों की तरह लचकीले ढंग से घुमा-फिरा रही

थी। उसके पोर्सलीन जैसे सफेद दाँतों के बीच एक तीली दबी थी, जिसे वह निरन्तर चबाये जा रही थी। मैंने देखा कि खेल में व्यस्त होने के बावजूद वह बराबर हथेलियों से अपने उरोजों को सहलाती जा रही है। मैंने तुरन्त अपनी आँखें दूसरी तरफ़ फेर लीं, किन्तु मेरे मस्तिष्क में उसके हाथों की गति एक अजीब-सी खलबली मचाती रही। शतरंज की वह बाज़ी बहुत आसान थी, किन्तु ज़ुज़ा को कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि वह कौनसी चाल चले। आसपास खड़ी लड़कियों को देखकर वह अनिश्चित-भाव से कंधे सिकोड़ देती थी और फिर खिलखिलाकर हँस पड़ती थी। उस क्षण मैंने पहली बार उसकी बड़ी, जर्मन-नस्ल की नीली आँखों को देखा था और मुझे उनकी हल्की नीली-सी सफेदी कुछ-कुछ अप्रीतिकर-सी लगी थी। देर तक मैं समझ नहीं सका कि उन्हें देखकर मुझे कौनसी चीज़ याद हो आती है। किन्तु बाद में उन्हें देखकर मुझे हमेशा कार्प मछली का ब्लेडर याद हो आता था···और यह उपमा हमेशा के लिए मेरे भीतर जम गयी है। बहुत-से कारणों में से यह भी एक कारण है कि मैं ज़ुज़ा से नफ़रत करने लगा हूँ और उसे सह नहीं पाता। किन्तु यह एक ऐसा कारण है जो खुद मुझे अपने से नफ़रत करने को मजबूर कर देता है और मैं स्वयं अपने को नहीं सह पाता। ज़ुज़ा तब एक ग़लत चाल चल बैठी। ईवा ने उसका पूरा फ़ायदा उठाया और कुछ सही चालों के बाद खेल अनिर्णीत समाप्त हो गया। ईवा दोबारा अपने ऊँचे सिंहासन पर आ विराजी थी "तुम बहुत अच्छा खेलती हो।" उसने ज़ुज़ा से कहा। खुशी से ज़ुज़ा का चेहरा दमकने लगा और भावावेश में उसने ईवा को गले लगा लिया। एक क्षण में मैं बाज़ी की पेचीदगियों को समझ गया था। अभी तक मैंने अन्तर्राष्ट्रीय शतरंज खिलाड़ी की जो बुज़ुर्गियत अपने पर ओढ़ रखी थी, उसे झट अलग फेंककर मैं बड़े मुखर-भाव से उन्हें बाज़ी के बारे में सही सुझाव बताने लगा। उस क्षण मेरे स्वर में जो ओज आ गया था, वह आजकल मैं अपने में बहुत कम महसूस कर पाता हूँ। मैं कार्प के ब्लेडरों के सामने शेखी बघार रहा था। चार दिन बाद ज़ुज़ा ने मुझे बताया था कि शतरंज के सुझावों से कहीं अधिक मेरे इस ओजपूर्ण लहजे

ने उसे प्रभावित किया था। उस रात ग्यारह बजे हम दोनों एक साथ टेरेसा-क्लब में बैठे थे।

जब कभी मैं किसी नाइट-क्लब में जाता हूँ, मुझे हमेशा कुछ अजीब-सा महसूस होता है। मैं कुछ-कुछ सहमा-सा रहता हूँ। मुझे लगता है जैसे मैं एक बारह वर्ष के लड़के की तरह एक ऐसी फ़िल्म देखने चला आया हूँ, जो बच्चों के लिए निषिद्ध है या बेहतर ढंग से कहूँ तो सबके बीच में अपने को एक चोर की तरह पाता हूँ। जुज़ा ने उस रात हरा स्वेटर पहन रखा था और वह लाल कालीन से ढकी सीढ़ियों पर मेरे आगे-आगे चल रही थी। मुझे अपने पर गर्व था कि मैं एक सुन्दर, सुडौल लड़की के साथ हूँ, लेकिन हमेशा की तरह मुझे यह विचार भी कोंच रहा था कि इसी लड़की के कारण मैं सब लोगों की नज़रों का केन्द्र बन गया हूँ। जुज़ा ने बारमेड को देखकर हवा में हाथ हिलाया और फिर धीरे से कहा 'चाओ!' हम अभी बैठे ही थे कि पियानो-वादक ने, जो अभी कुछ देर पहले तक शोपाँ की खिचड़ी बना रहा था, ज़ोर-ज़ोर से 'भम्बो' बजाना शुरू कर दिया। जुज़ा ने मुस्कराते हुए आँखें मूंद लीं। पियानो के साथ अब ड्रम और वॉयलिन ने भी दखल देना शुरू कर दिया था—लेकिन कुछ इतने भद्दे और अश्लील ढंग से कि मेरा ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुए बिना न रह सका। वह आदमी जो ड्रम बजा रहा था, बिल्कुल ड्रम जैसा ही दीखता था। जुज़ा की ओर देखकर उसकी बत्तीसी खुल गयी और वह डांसिंग-फ्लोर पार करके हमारा अभिवादन करने चला आया।

"तुम अक्सर यहाँ आती हो?" मैंने पूछा।

"कभी-कभी···और तुम?"

"बहुत कम।"

"दुनिया का सबसे खूबसूरत नाइट-क्लब कहाँ है? पेरिस में?"

"मुझे नहीं मालूम," मैंने कहा।

"अरे छोड़ो···तुम हर जगह जा चुके हो। पेरिस, मास्को, बर्लिन, रियो···क्या मैं जानती नहीं ?"

मैं कुछ देर तक उसे दुनिया के विभिन्न शहरों के रात्रि-जीवन के बारे में बताता रहा। वह मेरी बातों को इतनी उत्सुकता से सुन रही थी कि उसके सामने मैं यह जतलाने का लोभ संवरण नहीं कर सका कि इन चीज़ों के बारे में मेरा अनुभव काफ़ी गहरा है।

"मैं अभी तक कहीं नहीं गयी।" उसने कहा, "पिछले साल सिर्फ़ रूमानिया के समुद्र-त्यट 'ममाई' में गयी थी। रूमानियन लड़कियाँ धूप में नहीं लेटतीं। रंग उनका साफ चिट्टा है, लेकिन बाल अक्सर काले होते हैं और वे जान-बूझकर धूप को अपने जिस्म पर नहीं लगने देतीं। कॉन्स्टेन्स में केसिनो (जुआघर) है बिल्कुल नीस की तरह··· तुम वहाँ गये हो ? पिछले हफ्ते हमारे दफ्तर के कुछ लोग वियना गये थे। मेरे पास पैसे नहीं थे, इसलिए मैं कहीं नहीं गयी। जब वे वापस आये, तो उनकी खुशी बस देखते ही बनती थी। स्ट्रिपटीज़ देखकर आये थे। क्या तुमने कभी स्ट्रिपटीज़ देखी है ?"

"हाँ···एक बार पेरिस में देखी थी···लेकिन मुझे कुछ ज्यादा अच्छी नहीं लगी।"

"फिर वहाँ गये क्यों ? सुना है, हर मर्द को अच्छी लगती है।"

मैं उसे सिगरेट पीते देखता रहा। वेटर कोन्याक रख गया। वह तुरन्त गिलास को अपनी हथेलियों से गर्म करने लगी। जब कभी वह अधमुंदी आँखों से देखती, उसकी पलकें आँखों के ऊपर इस तरह बाहर निकल आतीं मानो किसी हैट का सिरा बाहर की तरफ़ निकला हो। मैंने हँसते हुए उससे कहा कि उसका इस तरह आँखें मूँदना मुझे बेहद अच्छा लगता है···लगता है जैसे किसी 'जोकी' के हैट की तरह उसकी पलकें आँखों के ऊपर मुड़ी हुई हों।

"अगर मैं चाहूँ तो इन्हें बिल्कुल ऊपर मोड़ सकती हूँ··· लेकिन छोड़ो !" उसने उदासीन भाव से कहा। वह किसी और चीज़ के बारे में सोच रही थी··· फिर उसने बिल्कुल गम्भीर स्वर में कहा—

"अगर मैं पेरिस में होती, तो ज़रूर स्ट्रिपटीज़ करती।"

"तुम सोचती हो, लोगों के सामने नंगा होने से उन्हें बहुत रुपया-पैसा मिलता है ?"

"नहीं, यह नहीं। लेकिन मेरी देह की बनावट काफ़ी अच्छी है··· और अगर देखा जाए तो एक आदमी के सामने नंगा होने से कहीं ज्यादा इज्ज़त की चीज़ है— बहुत-से आदमियों के सामने नंगा होना।

डांसिंग-फ्लोर पर एक पहलवान-टाइप का नौजवान एक चालीस बरस की औरत के साथ नाच रहा था। औरत ने ऐनक लगा रखी थी और उसका सिर नौजवान के सिर से काफ़ी ऊँचा पड़ता था। चेहरा-मुहरा बहुत सुन्दर था और टाँगें लम्बी थीं। नौजवान जिस पेचीदे 'स्टेप्स' के साथ उसे नचा रहा था, वह वैसे ही नाच रही थी। बहुत उत्साह और जोश के साथ, मानो इस तरह नाचकर वह ऊबे हुए नौजवान के सामने अपनी सब कमियों की क्षतिपूर्ति कर देना चाहती हो। मैं ज़ुज़ा से शतरंज के बारे में बातचीत करने लगा। यह जानते हुए भी कि शतरंज के खेल में उसका ज्ञान ज्यादा नहीं, मैं जान-बूझकर उसकी तारीफों के पुल बाँधने लगा। मैंने अपने तर्कों से उसे यह विश्वास दिला दिया कि किसी योग्य शिक्षक के नीचे वह कुछ ही समय में सचमुच एक शानदार खिलाड़िन बन सकती है। मुझे यह कहने की ज़रूरत नहीं थी कि ऐसा योग्य शिक्षक मेरे जैसा आदमी ही हो सकता है, जो उसकी प्रगति में पितृवत्, निःस्वार्थ दिलचस्पी रखता है। यह स्पष्ट था कि ज़ुज़ा ने अपना केरियर बनाने के लिए शतरंज को चुना था और वह उसे बहुत गम्भीरता से लेती थी। मेरी प्रशंसा सुनकर उसका चेहरा गुलाबी हो आया और वह कंधे झुकाकर बैठ गई। उसे देखकर लगता था मानो ज़िन्दगी में पहली बार उसने अपनी योग्यता का मूल्य आंका है। हमदर्द पिता और योग्य पुत्री का यह ड्रामा रात के एक बजे तक चलता रहा।

उस समय तक मुझे यह पता चल गया था कि वह किसी बैंक में क्लर्की करती है। उसने मुझसे यह भी कहा कि किसी दिन वह अपनी पीठ पर उस ज़ख्म का निशान दिखायेगी, जो उसके पति ने चाकू से किया था, जब वह उसे छोड़कर चली गयी थी। एक बजे के करीब उसने मुझे बताया कि उसने ज़रूरत से ज्यादा पी ली है··· लेकिन चिन्ता की कोई बात नहीं, अभी टायलेट-रूम में अपने को दुरुस्त करके वह वापस लौट आयेगी। मैंने कॉफ़ी मँगवाई। मेरा सिर भी घूम रहा था। शीशे में शक्ल देखी, तो आँखें सुर्ख़ दिखाई दीं और चेहरा पीला-ज़र्द। किन्तु ज़ुज़ा पहले से भी अधिक आकर्षक और ताज़ा दिखाई दे रही थी। लाल कालीन पर वह बड़े संयत और सधे कदमों से चल रही थी। मर्दों की तरह वह कोन्याक पी रही थी, मर्दों की ही तरह सिगरेट का धुआँ उगल रही थी और मर्दों की तरह तीली से दाँत कुरेद रही थी। "जानते हो, मैं मर्दों की तरह शतरंज खेलना चाहती हूँ।" मैं मुस्कराया और सोडा पीने लगा। मैं बड़ी उत्सुकता से उसके लौटने की प्रतीक्षा कर रहा था। उसकी एड़ियाँ बहुत ख़ूबसूरत थीं। वह ऊँची एड़ियों के नुकीले सेण्डिल पहने थी और बड़ी अदा से चल रही थी। जब वह सीढ़ियाँ उतर रही थी, तो सब लोगों की आँखें उस पर लगी थीं। उसके सेण्डिलों और टाँगों के इस सुन्दर जोड़ को देखकर मैं कृतज्ञ-सा हो आया, अग़र वे भद्दे होते तो लोग उसकी ओर देखने के बजाय मेरी ओर देखते और मुझे ही उनके लिए जिम्मेवार मानते।

वह वापस लौटी, तो दो पुरुष उसके साथ आते दिखाई दिये। पहले आदमी का चेहरा काफी स्थूलकाय और मुँह छोटा-सा था···हाव-भाव भीगी बिल्ली-सा। दूसरे आदमी की भौंहें घनी थीं और आँखों का रंग राख-सा सफेद। वह बाल्कान प्रदेश का निवासी दिखाई देता था। लेकिन ज़ुज़ा ने परिचय देते हुए बताया कि वह लेबानोन का रहने वाला है। सचमुच में वह कौन था, यह मैं आज तक नहीं जान पाया हूँ। न ही शायद कभी जान पाऊँगा। दोनों विदेशियों ने हिकारत-भरी निगाहों से नाइट-क्लब का मुआयना किया। उन्हें देखते ही वायलिन-वादक ने सिर झुकाकर उनका अभिनन्दन किया। ज़ुज़ा बड़ी घबराहट और तेज़ी से बातचीत

कर रही थी, वाल्कानियन उत्तर में एक-दो शब्द कह देता था। पहला आदमी उन्हें सीढ़ियों के पास छोड़कर बार के काउण्टर के आगे बैठ गया। उसने बड़ी लापरवाही से अपने हाथ पतलून की जेबों में ठूँस रखे थे। उसे देखते ही काउण्टर के पीछे बैठी स्त्री का चेहरा चमक उठा। "सिर्फ एक मिनट," जुज़ा ने पास आकर मुझसे कहा, "मुझे यहाँ अपने कुछ पुराने मित्र मिल गये हैं।" उसकी आँखें अस्थिर थीं और चेहरा लाल हो गया था। "बेशक," मैंने कहा और अनायास मेरी आँखें वाल्कानियन पर उठ गयीं। वह बड़ी मुश्किल से अपनी मुस्कराहट दबाने की कोशिश कर रहा था।

वेटर दो कोन्याक मेज पर रख गया—एक मेरे आगे, दूसरी जुज़ा की सिगरेटों के सामने। लेकिन जुज़ा वापस नहीं लौटी। मैं काउण्टर की ओर नहीं देखना चाहता था, लेकिन चूँकि मेरी समस्त भावनाएँ काउण्टर पर ही केन्द्रित थीं, मुझे लगा जैसे मेरी पीठ की समस्त रगें उस ओर ताक रही हों। मैं जी भरकर जुज़ा को गालियाँ दे रहा था। गालियों के बीच रह-रहकर रिम्बॉ की एक पंक्ति मेरे दिमाग में गूँज जाती थी, "मेरी गोद में सौंदर्य था···और मैंने उसे कुचल डाला," मुझे लगा जैसे रिम्बॉ के इस उद्धरण ने मेरी ईर्ष्या को न्यायोचित बना दिया है और उसे एक पवित्र रूप दे दिया है। मेरे मन में कुछ वैसा ही गुस्सा आ रहा था, जैसा काले आदमियों को अपने गोरे मालिकों पर आता होगा।

हम इन गुण्डों को लात मारकर निकाल क्यों नहीं देते? आखिर किसने इन्हें यह हक दिया है कि हमें हिकारत की नज़र से देखें? ऊपर से मैं बहुत शांत और आत्म-संयत दीख रहा था, किन्तु मन की डायरी में प्रतिहिंसा के भयानक दृश्य उभर रहे थे। अमरीका के किसी दक्षिणी शहर में लाल झण्डा लिये लोगों का हुजूम बढ़ता आ रहा है। दूर से गोलियों की धड़ाधड़ सुनाई देती है। दो आदमियों ने रायफलों के कुन्दों से होटल के दरवाजों को तोड़ डाला है और भीतर से वाल्कानियन के कॉलर को पकड़कर घसीटते हुए बाहर ले आये हैं। वाल्कानियन डर के

मारे बिलबिला रहा है। मैं जुज़ा की कोन्याक पीने लगा। चारों तरफ देखा। पहला आदमी बारमेड से बातें करने में मशगूल था। जुज़ा काउण्टर पर झुकी बैठी थी और वह सुस्त, आत्म-तुष्ट दिखने वाला बाल्कानियन उसके कंगन से खेल रहा था। मुझे लगा जैसे मैं दूरबीन से कंगन और कलाई के बीच घूमती हुई अँगुली को देख सकता हूँ— एक छोटे नाखून वाली अँगुली, जिसके दूसरे और तीसरे जोड़ों पर काले बाल उगे हैं। उस क्षण जुज़ा हल्के से मुस्करायी और बाल्कानियन का चेहरा सहलाने लगी। "वेटर, बिल!" मैंने कहा।

सहसा एक गहरी उदासी मेरे भीतर घिर आई। मेरा मस्तिष्क बिल्कुल साफ था, मानो मैंने एक बूंद भी न पी हो। मुझे उस क्षण लगा जैसे मैं अपनी सतर्क और पारदर्शी निगाहों से सब-कुछ स्पष्ट देख सकता हूँ--शराब की मेज़ पर बैठा हुआ मैं और डांसिंग-फ्लोर पर नाचते हुए लोगों की छायाएँ, जो बेतहाशा किसी चीज़ से बच पाने के लिए भाग रहे हों और बच न पा रहे हों। जुज़ा और बाल्कानियन नाचने के लिए फ्लोर पर चले आये थे। एक क्षण के लिए वे मेरे सामने आकर रुके, "आपकी अनुमति से।" बाल्कानियन ने चेक में कहा। आश्चर्य है, उस समय मुझे उसका दम्भपूर्ण व्यवहार बुरा नहीं लगा। जुज़ा ने कहा कि वह एक मिनट में ही वापस लौट आयेगी। कुछ देर तक मैं उन्हें नाचते हुए देखता रहा। बाल्कानियन ने काफी नरम जूते पहन रखे थे। जुज़ा ने उसे सिर्फ दाहिने हाथ से पकड़ रखा था, और वह कभी आगे जाती थी, कभी पीछे··· कभी आगे, कभी पीछे। उसकी टाँगें एक बार फिर मुझे अपने मोहपाश में बाँधने लगीं। दोनों ही सारी दुनिया से बेखबर होकर नाच रहे थे। उन्होंने शायद मुझे बाहर जाते हुए देखा भी नहीं।

दूसरे दिन मैंने एक शतरंज-विशेषज्ञ की हैसियत से डॉ० रैखल से जुज़ा के बारे में पूछताछ की। डॉ० रैखल सब-कुछ जानते हैं—चाहे इस 'सब-कुछ' को जानने के लिए उन्हें ज़िन्दगी की नालियों और नहरों के भीतर ही क्यों न घुसना पड़ा हो। यों वे दुनिया के ऊपर रहकर तटस्थ नैतिक

दृष्टि से सब-कुछ देखने का उपक्रम करते हैं, किंतु सत्य का पता चलाने के लिए यदि उन्हें सुन्दर फूलों की क्यारियों को खोदने की जरूरत महसूस हो, तो वे हिचकेंगे नहीं। शुरू में उन्होंने बहुत 'प्रेम से' जुज़ा के शारीरिक विज्ञान का विश्लेषण किया, किन्तु शीघ्र ही वे नाटकीय क्षेत्र में उतर आये। जुज़ा के बारे में उनकी जानकारी यह थी : उसका विवाह ब्रातीस्लावा में किसी इन्जीनियर के साथ हुआ था। वह नदी पर बांध-बिजली निकालने का काम किया करता था। जुज़ा जल्दी ही ऐसी ज़िन्दगी से ऊब गई और एयरलाइन्स के दफ्तर में नौकरी करने लगी। एक दिन सहसा उसके पति के हाथ उसकी डायरी लग गई, जिसमें उसने बड़ी तफसील से अपने प्रेम-अनुभवों का वर्णन किया था। पति ने तैश में आकर रोटी काटने का चाकू उसकी पीठ में भोंक दिया। मुकदमा चला और कोर्ट में सबूत के तौर पर जुज़ा की डायरी पेश की गई। एक अच्छा-खासा स्कैण्डल बन गया···जुज़ा के अनेक प्रेमी सार्वजनिक रूप से जाने-पहचाने लोग थे। "सेक्स और पैसे के पीछे भागती है," डॉ॰ रैंखल ने कहा, "लेकिन शतरंज में एक दिन जरूर अपना नाम रौशन करेगी।"

उसी दिन शाम को उसने मेरे घर फोन किया। "कल तुम कहाँ गायब हो गये ?" उसने कहा। वह मुझसे तुरन्त मिलना चाहती थी। मैंने जुकाम का बहाना किया जिसका फ़ायदा यह हुआ कि नाइट क्लब में मिलने के बजाय वह मेरे घर आने को तैयार हो गई।

पहाड़ी कॉटेजों और होटलों में लोग जिस आसानी से लड़कियों के साथ अफ़ेयर चलाते हैं, मुझे उनसे नफरत है। मेरा दुर्भाग्य यही है कि मैं स्वयं कभी उनसे नहीं बच पाता··· या प्रायः नहीं बच पाता। अगले दिन मैं बौखलाता हूँ। मैं उन भेदपूर्ण निगाहों को बर्दाश्त नहीं कर सकता जो मुझसे पिछली रात का गोपनीय सम्बन्ध फुसफुसाती हैं। मुझे यह अच्छा लगता है जब मैं रूखा-सा जवाब देकर उनकी आशाओं पर पानी फेर देता हूँ। ये 'आसान' औरतें हैं लेकिन चूंकि इन्हें हर अफ़ेयर उम्मीद की एक शुरुआत जान पड़ती है, यह मुझसे ज्यादा बेहतर नहीं। कितनी करुणा-जनक और मूर्खतापूर्ण स्थिति है, जब मैं उनसे सिर्फ़ इसलिए नफ़रत करने

लगता हूँ क्योंकि एक रात मैं उन्हीं की तरह 'ख़राब' बन गया था। जुआ मेरे लिए पहाड़ी कॉटेज के आसान और क्षण-भंगुर 'प्रेम' से ज्यादा कुछ नहीं थी। आधे में टूटा हुआ एक 'मामला'। इससे पेश्तर कि मैं उससे नफ़रत करने लगूँ, मैं बीच में ही इस मामले को ख़त्म कर देना चाहता था।

उसने सलेटी रंग का ब्लाउज़ और तंग, कसी हुई स्कर्ट पहन रखी थी, कुछ उन तुनुकमिज़ाज लड़कियों की तरह जो फिल्हार्मोनिक ऑरकेस्ट्रा का कन्सर्ट सुनने जाती हैं और आस-पास खड़े लोगों की प्रशंसापूर्ण निगाहों की ज़रा भी परवाह नहीं करतीं। वह अपने साथ एस्प्रीन की गोलियाँ लाई थी, और इस बात से बहुत प्रसन्न दिखाई पड़ती थी कि मैं उसे शतरंज सिखाने में मदद कर सकता हूँ। उसे सचमुच बुरा लगता अगर मैं ऐन मौके पर इन्कार कर देता। बाल्कानियन के बारे में उसने कोई सफाई पेश नहीं की, न ही मैंने उसे यह बताने की ज़रूरत समझी कि मैं उसे छोड़कर क्यों चला आया था। पहली चीज़ का अब कोई महत्त्व नहीं था, दूसरी चीज़ स्पष्ट थी।

तुनुकमिज़ाज महिला का नाटक उसने जल्दी ही छोड़ दिया। मुझे लगता है यह नाटक उसने मेरे लिए इतना नहीं, जितना अपनी भद्र पोशाक की इज़्ज़त रखने के लिए किया था। मेरे पास दाँत कुरेदने की सींकें नहीं थीं, अतः वह माचिस की तीली चबाने लगी।

सुबह होने तक वह मेरे साथ रही। तब से हम हफ्ते में दो-तीन बार एक-दूसरे से मिलते हैं। हर बार मैं निश्चय करता हूँ कि अब उससे नहीं मिलूंगा। यदि अब तक मैं इस निश्चय को टालता रहा हूँ तो सिर्फ इसलिए कि रात की घड़ियों का भयावह, दम घोटता अकेलापन मुझसे बर्दाश्त नहीं होता। जब हम कुछ दिनों बाद मिलते हैं तो वह मुझे कभी नहीं बताती कि बीच के दिनों में उसने क्या कुछ किया था, कहाँ रही थी। उसकी यह चुप्पी मुझे कुछ आश्चर्यजनक लगती है क्योंकि वह मुझे अक्सर उन दिनों के बारे में बहुत विस्तारपूर्वक बताती है, जब हम एक-दूसरे से नहीं मिले

थे—सव-कुछ इतने खुले और मुक्त रूप से कि कभी-कभी मैं आहत-सा महसूस करता हूँ। उसका खयाल है कि वह जि़न्दगी को अच्छी तरह समभती है और उसके नजदीक 'जि़न्दगी' का अर्थ सिर्फ एक है: पुरुष और स्त्रियों के वीच वे गुह्य सम्वन्ध जिन्हें दुनिया भद्रता के मुखौटे के पीछे छिपाकर रखती है। अपने पति से वह नफ़रत करती है। मुझे इस वात पर एतराज नहीं कि उसने मेरी पीठ छलनी कर दी, लेकिन वह ऐसा करना अपना अधिकार समभता है, इसके लिए मैं उसे माफ़ नहीं कर सकती। आखिर किस लिहाज से वह मुझसे वेहतर था? पॉवर-हाउस की कैंटीन में काम करने वाली लौंडिया से उसकी सांठ-गांठ थी!"

जुज़ा जानती है कि लोग उसके चरित्र को 'अच्छा' नहीं समभते। अक्सर वह इस चीज़ को मजाक में उड़ा देती है। किन्तु कभी-कभार वह अपने को सही साबित करने की भी कोशिश करती है। वह समभती है कि मैं भी उसकी तरह पूर्वाग्रहहीन हूँ और मेरे वारे में उसकी यह धारणा मुझे वुरी तरह खटकती है? कभी-कभी वह कटाक्ष करते हुए कहती है, "वाह! क्या यही औरतों को आजादी दी गयी है? अगर पुरुष औरतवाज़ है, तो कोई एतराज नहीं करता। हाँ···हाँ···मैं सव जानती हूँ···तुम मर्द लोग आपस में कैसी वातें करते हो। लेकिन अगर औरत ऐसी-वैसी वात कर वैठे, तो सव नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं, यहाँ तक कि औरतवाज आदमियों को भी ऐसी औरतें वुरी लगती हैं।" वातों-ही-वातों में वह भावुक-सी हो जाती है। जीवन में उसे एक वार 'महान् प्रेम' का सामना हो चुका है और वह प्रायः सोचती है कि कभी-न-कभी वह दुवारा प्रेम के चक्कर में पड़ जायेगी। कहती है, इस वार प्रेम हुआ तो ज़रूर विवाह कर लेगी और साफ़-सीधी ज़िन्दगी वितायेगी। कार्प मछली वाली उसकी आंखें मुझे टटोलती हैं। लगता है, जैसे वह मुझमें अपने अगले प्रेम को ढूंढ़ रही हो।

मैं इस रहस्य को आज तक नहीं समभ सका कि वह शतरंज के चक्कर में कैसे पड़ गयी। उसकी अपनी ज़िन्दगी में इतना विखराव है कि

सम्भवतः शतरंज के नियम और कानून उसे आकर्षित करते हैं ··· या शायद कहीं अपने भीतर वह बहुत बेचैन और असंतुष्ट है और शतरंज में मुक्ति खोजती है। कुछ भी हो···वह इस खेल को बहुत गम्भीरता से लेती है। बातें करते हुए वह बड़े आत्मविश्वास से कहती है, मानो किसी अदृश्य शंकालु व्यक्ति को चुनौती दे रही हो। "दो वर्षों में मैं स्टेट-चेम्पियन बन जाऊँगी।" मैं जब अपनी मेज़ पर काम करता हूँ, वह सोफा पर कुहनी टिकाए शतरंज की बाज़ी देखती रहती है। जब उसे किसी चाल का रहस्य समझ में नहीं आता, तो अपने कुन्द दिमाग़ को कोसती है और समझ आने पर सहसा उसका चेहरा खुशी से चमकने लगता है।

उसकी हट्टी-कट्टी देह है और मुझसे दुगुना खाती-पीती है। ऐसे भी लोग हो सकते हैं जिन्हें कभी-कभी भूख नहीं लगती, पर उसकी कल्पना के बाहर हैं। संयम नाम की कोई चीज उसके लिए नहीं है···प्रेम करने में भी नहीं। प्रेम करने की लोलुपता उसके लिए कुछ वैसी ही है जैसे भुनी हुई मछली खाने का लालच। बहुत-सी सुखद शामें मैंने उसके साथ बितायी हैं। बैंक के काउण्टर पर काम करते हुए उसे बहुत-से लोगों से मिलने-जुलने, बातचीत करने का अवसर मिलता है। उन लोगों की ज़िन्दगी की बहुत-सी कतरनें, बातचीत के टुकड़े उसने बटोर रखे हैं, जिन्हें वह उन्हीं के हाव-भाव, तौर-तरीकों के साथ बन्दर की तरह नकल करते हुए मुझे सुनाती है। मेरी ही तरह उसे भी पुरानी स्मृतियों को कुरेदने का शौक है। जिन लोगों का बचपन ग़रीबी में गुज़रता है, उन सबकी स्मृतियाँ लगभग एक जैसी ही होती हैं···हम दोनों का भी यही हाल है। अतीत की बातें करते हुए हम दोनों ही बहुत उत्तेजित हो जाते हैं, एक-दूसरे को टोकते हैं··· लगता है, वह साधारण जीवन हमारे लिए एक स्वर्ण-युग था जो कभी वापस नहीं लौट सकता। जुज़ा घुटनों को बाँहों से बाँधकर बैठ जाती है बच्चों की तरह। किन्तु कुछ देर बाद ही उसे कोई अश्लील चुटकुला याद हो आता है, निर्लज्ज भाव से मुझे सुनाती है और एक भद्दी-सी हँसी उसके चेहरे पर फूट पड़ती है।

मेरी रज़ाई जुज़ा की क्रीम से महक रही थी, जिसे वह हर रात सोने

है। इस काम में मुझे ज्यादा समय खर्च नहीं करना पड़ता। दफ्तर में रोज़ जाने की ज़रूरत नहीं···हफ्ते में एक-दो बार जाना ही काफ़ी है। बाकी काम टेलीफोन और डॉ० रैखल के सहारे चल जाता है। डॉ० रैखल इस विश्वास पर जीते हैं कि उनके बिना अंक नहीं निकल सकता—और मुझे भी उनके इस विश्वास पर कोई आपत्ति नहीं।

उस दिन सबसे पहले मैं काली टाई खरीदने गया। फिर दफ्तर आया। रैखल मेज़ के पीछे खड़े थे और टेलीफोन में कुछ मिमिया रहे थे। बोलते-बोलते वह तुतलाने लगते थे, जिसे सुनकर मेरी देह में झुरझुरी-सी दौड़ जाती थी। उन्होंने गहरे नीले रंग का घिसा-पिटा सूट और पीले रंग के जूते पहन रखे थे। चेहरे को देखकर लगता था जैसे बहुत दिनों से हजामत नहीं बनायी।

मैंने श्रीमती फियाला से हाथ मिलाया। डॉ० रैखल के सामने मैं उन्हें यह नहीं बताना चाहता था कि मेरी माँ का देहान्त हो गया है। श्रीमती फियाला टाइपराइटर के सामने पत्थर-सी चुपचाप बैठी थीं ताकि डॉ० रैखल की बातचीत में कोई खलल न पड़ सके। उन्होंने मुझे बताया कि मेरे लेख के प्रूफ़ आ गये हैं और उनके दांत में दर्द हो रहा है, यह पूछा कि क्या मैं कॉफ़ी पीना चाहता हूँ और फिर देगची में पानी भरकर स्विच दबा दिया। श्रीमती फियाला एक सहृदय, सफेद बालों वाली महिला हैं··· हर चीज़ में दुरुस्त और दक्ष। उनके लिए सम्पादकीय दफ्तर महज़ दफ्तर नहीं है···बल्कि दुनिया को हिला देने वाली सनसनीखेज़ घटनाओं का केन्द्र है। मुझे बेहद चाहती हैं और कभी-कभी उनके स्नेह को देखकर मुझे दुविधा-सी होती है कि कहीं इसके पीछे एक कर्मचारी की अपने 'बॉस' के प्रति पुरानी स्वामि-भक्ति तो नहीं छिपी है। वह अक्सर मुझे अपनी छोटी-बड़ी खुशियों और चिन्ताओं को सुनाने आती हैं··· हम दोनों आपस में डॉ० रैखल की खाल उधेड़ते हैं।

डॉ० रैखल एडवोकेट हैं···सब-कुछ देख चुके हैं, सब-कुछ जानते हैं, सबको उपदेश देते हैं। कम-से-कम छः फीट लम्बे हैं। उनके सब कोटों की

आस्तीनें छोटी पड़ती हैं और उनके भीतर से उनके बड़े-बड़े, पंजेनुमा हाथ लटकते रहते हैं। जब कभी हजामत बनाते हैं, उनके चेहरे का रंग नीला नज़र आता है। जब एक बार उन्होंने जान लिया कि शतरंज में उन्हें सफलता हाथ नहीं लगेगी, तो ड्राफ्ट में हाथ आज़माया और उसमें सचमुच 'स्टार' बन गये। रैखल एक ऐसे शख्स हैं जिनके व्यक्तित्व से एक अप्रीतिकर-सा उत्साह फटा पड़ता है···एक ऐसा उत्साह जो दूसरों की तकलीफों और दुर्घटनाओं पर पलता है । वह दिन-रात सब-कुछ नोट करते रहते हैं, किसने क्या कहा, किससे क्या बात की। उन्होंने कभी अपनी नोटबुक का नाजायज़ फ़ायदा उठाया है या नहीं, मुझे नहीं मालुम। किन्तु कुछ लोगों के बारे में वे इतने भेद-भरे स्वर में बोलते हैं मानो वे उनकी हथेली पर हों और वे जब चाहें उन्हें मक्खी की तरह कुचल सकते हैं। लगता है, जैसे वह मध्य युग के कोई कट्टर धर्म-परीक्षक हों···बिना किसी धर्म के नाम पर वे लोगों को आग में झोंक सकते हैं।

"कुछ सुना!" उन्होंने टेलीफोन रखते हुए कहा, "अमस्टरडम टूरनामेण्ट के लिए ब्लाहा को चुना गया है।"

"ठीक तो है···उसके अलावा और है ही कौन?" उन्होंने स्निग्ध, सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखा।

"तुम?"

मैंने कंधे सिकोड़ लिये।

"तुमने शतरंज की थ्योरी पर अपना ध्यान लगा लिया है, मुझे इसके खिलाफ कुछ नहीं कहना है···लेकिन तुम्हारे दर्जे के हमारे यहाँ कितने खिलाड़ी हैं? बताओ, कितने हैं?"

"क्या उन्हें गिनना होगा?"

"मैं मज़ाक नहीं कर रहा।"

"ब्लाहा मुझसे कहीं वेहतर है। उन्होंने ठीक चुनाव किया है। उसी खिलाड़ी को भाग लेना चाहिये जो जीत सके। अन्तर्राष्ट्रीय टाइटल से कुछ नहीं वनता।"

मैं अपने कमरे में चला आया। उन्होनें जरूर सोचा होगा कि विदेश जाने का मौका खोकर मैं मन-ही-मन जल-भुन रहा हूँगा।

मुझे अगर गुस्सा आ रहा था तो रैखल के ढोंग पर। वह अच्छी तरह जानता है कि पिछले वर्षों से मैं कितनी बुरी तरह खेल रहा हूँ। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि मेरे पतन पर उसे गहरा सन्तोष है। अवश्य ही वह मेरे कैरियर के 'संकट' से एक मानवीय खुशी हासिल कर रहा है··· आखिर मैं भी उसके दयनीय स्तर पर आ गया था।

अपने कमरे में आकर मैंने खिड़की से वाहर देखा। खरगोशों के विलों के सहारे एक क्रिसमस वृक्ष खड़ा था। मैं विल्कुल भूल गया था कि चौदह दिनों वाद क्रिसमस है। माँ पहली जनवरी से रिटायर होना चाहती थीं। क्रिसमस के अवसर पर वह एक ऊँची पीठ वाली आरामकुर्सी चाहती थीं, जिस पर वह जिन्दगी में पहली वार आराम से वैठ सकें। मुझे अपने ऊपर गहरी शर्म आ रही थी। अभी एक महीने पहले मुझे दुकानों में रखी सब आरामकुर्सियाँ महँगी जान पड़ती थीं। इस वार क्रिसमस की छुट्टियों में क्या घर जा सकूँगा? हमारे घर का चूल्हा ठंडा पड़ा होगा, पतीले में चरवी भुनने की सिरसिराहट सुनायी नहीं देगी, मछली की गन्ध विल्लियों को पागल नहीं वनायेगी।

पिछले वर्ष क्रिसमस-ईव की शाम मैं सोफा पर लेटा माँ को मछली काटते हुए देख रहा था। रात को हम सव शोरवे के पतीले के इर्द-गिर्द टेवुल के सामने वैठे थे। खाने से पहले माँ ने पिता की ही तरह 'क्रॉस' लिया और पिछले दस वर्षों की ही तरह उदास भाव से हिलाते हुए कहा, "वच्चो कौन जानता है, कि हम इस तरह एक साथ शायद कभी दुवारा

नहीं बैठेंगे !" मैं और रोजी मुस्कराने लगे···हम जानते थे, माँ यही शब्द कहेंगी । "हाँ···हाँ···अच्छी तरह हँस लो।" माँ ने हल्की-सी झिड़की दी और चम्मच से शोरबा चखने लगीं, "पता नहीं, आजकल अच्छी मछलियाँ क्यों नहीं मिलतीं।"

श्रीमती फियाला मेरे लिए कॉफी लायीं ।

"यूजिन आपसे मिलना चाहता है···क्या भीतर आने के लिए कह दूं ?" मैं मना नहीं कर सकता था, वह दरवाज़े पर खड़ा था ।

"यूजिन···सिर्फ पन्द्रह मिनट !" मैंने चेतावनी के स्वर में कहा, "दुपहर तक मुझे प्रूफ़ खत्म करने हैं ।"

वह मुस्कराया, "मैं सिर्फ दस मिनट चाहता हूँ ।"

मेरे पास आकर उसने औपचारिक ढंग से हाथ मिलाया । यूजिन देखने में काफ़ी आकर्षक लगता है···गम्भीर चेहरा, बड़ी-बड़ी गोल आँखें । गुड़िया या खिलौने की तरह सुन्दर । जब कभी वह क्लब में आता है, औरतें उसकी ओर देखकर गद्‌गद-भाव से मुस्कराने लगती हैं, उसे सहलाना चाहती हैं, लाड़ना चाहती हैं···वह ऊब जाने का बहाना करता है । जब से उसने शतरंज खेलना शुरू किया है, उसका सुन्दर चेहरा-मुहरा उसके लिए बोझ बन गया है । सब उसके लड़कियों जैसे सलोने व्यक्तित्व पर लट्टू हैं, उसके पास एक पौरुष मस्तिष्क भी है, उसकी ओर कोई ध्यान नहीं देता ।

यूजिन कुर्सी पर बैठ गया । उसने लाल रंग का ऊनी मफलर गले में लपेट रखा था, ओवरकोट के चौड़े मुड़े हुए कॉलरों के बीच उसके काले सिर और पीले चेहरे को देखकर लगता था, मानो वे किसी तश्तरी पर रखे हों ।

"किताब कैसे चल रही है ?" उसने शालीन-भाव से पूछा ।

"चल रही है···इतनी बेचैनी क्यों ?"

उसने प्रशंसा-भरी आँखों से मेरी ओर देखा। वह अपने को मेरा शिष्य मानता है और शतरंज-संबंधी मेरी थ्योरियों में डूबा रहता है। मैं रेती के बारे में जो किताब लिख रहा हूँ वह कुछ अर्से से बीच में ही अटक गयी है। कुछ देर तक मैं दोष-मना भाव से दुविधा-भरे स्वर में उसे समझाता हूँ कि ऐसे काम में कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। मुझे लगा कि यूजिन मेरी बातों को नहीं सुन रहा और उसका ध्यान किसी और चीज़ में उलझा है। मैं बीच में ही रुक गया।

"क्या सोच रहे हो ?"

वह जैसे जाग पड़ा।

"क्या आप एक मिनट के लिए मेरे साथ शतरंज-बोर्ड पर आ सकते हैं ?"

उसने सिगरेट सुलगायी और घबराये भाव से जल्दी-जल्दी कश लेने लगा। शतरंज के बोर्ड पर मुहरें लगाते हुए उसकी अँगुलियाँ काँप रही थीं।

"कल मैं नेस्वादवा के साथ खेल रहा था···उसकी काली मुहरें थीं। आप देखते हैं···मुहरों की वही पोजीशन है जो पिछले साल विश्व-प्रतियोगिता में ताल और बोतोविन्नीक* के बीच चौदहवीं चाल पर थी।"

"एक सेकेण्ड," मैंने कहा, "मुझे अभी याद आया···तुम आज स्कूल नहीं गये ?"

उसने विरक्त-भाव से कंधे सिकोड़ लिये।

"नहीं···आज मैं भाग आया।" और वह तुरन्त पहले की तरह बोलने लगा, "आपको मालूम है, मैच के बाद शतरंज के विशेषज्ञों में यह बहस छिड़ गयी थी कि बोतोविन्नीक हमला करने की स्थिति में पहुँच सकता था या नहीं। बोतोविन्नीक की चाल पर सबने दाद दी थी···लेकिन मैं

*सोवियत संघ के विश्वविख्यात शतरंज के खिलाड़ी।

सोचता हूँ, वह ग़लत थी। देखिये···अगर मैं होता तो इस तरह खेलता।"

उसने शतरंज के बोर्ड पर मुहरें बदलीं और मेरी ओर विजय-मुद्रा से देखने लगा···स्पष्ट ही वह अपनी चाल पर दाद पाने की प्रतीक्षा कर रहा था।

किन्तु मेरा ध्यान शतरंज की ओर नहीं था। उसकी चाल में कोई नयी, महत्त्वपूर्ण खोज हो सकती है, मुझे इसमें कोई दिलचस्पी नहीं थी। जिस क्षण से उसने विरक्त भाव से मुझे बताया कि वह स्कूल से भाग आया है और फिर जिस उत्साह से मुहरें पलटता हुआ वह मुझे उस समस्या के बारे में समझाने लगा, जिसके लिए वह शायद रात-भर न सोया होगा, उस क्षण से उसके प्रति मेरे मन में एक अजीब-सा विद्रोह भड़कने लगा था। वह सुन्दर युवक सहसा मुझे एक अप्राकृतिक लुंज जीव-सा दिखायी देने लगा···एक बौना, जो अभी-अभी किसी पत्थर के नीचे से बाहर निकल आया हो। मेरे मन में आया कि उसने अपने आगे जो ईंटों का बुर्ज खड़ा किया है, उसे एक ठोकर मारकर गिरा दूं। मैं अपने को न रोक सका।

"पागलपन··· निरा पागलपन!"

उसका चेहरा फीका पड़ गया। कितनी आसानी से किसी व्यक्ति की आँखों में पीड़ा पहचानी जा सकती है। उसके चेहरे से लगता था मानो किसी ने सहसा उसे तमाचा जड़ दिया हो।

"लेकिन देखिये···मैंने काफ़ी सोच-विचारकर यह चाल सोची है।" उसने तनिक अनिश्चित स्वर में कहा, "मेहरबानी करके बता सकते हैं, मैंने कहाँ ग़लती की है?"

मैं उसके सामने आकर खड़ा हो गया।

"तुम मुझे मेहरबानी करके बता सकते हो कि स्कूल क्यों नहीं गये ?"

"मैं आपको दिखाये बिना नहीं रह सकता था···इसीलिए मैं डॉक्टर के पास जाने के बहाने आपके पास चला आया।"

"क्यों नहीं ! छोटे साहब ने एक रात जागकर बोतविन्नीक को मात दे दी ! स्कूल में आखिर टाइम खराब करने से क्या फ़ायदा ! जनाब, जून में आपकी परीक्षाएँ हैं···कुछ सोचा है इसके बारे में ?"

छोटे साहब का निचला होंठ मुड़ आया।

"लगता है, माँ अपना काम कर गयी हैं।" उसने कटाक्ष किया।

"हाँ···वह मेरे पास आयी थीं, तुम्हें लेकर चिन्ता में घुली जाती हैं। तुम उन्हें पुराने जमाने की औरत समझते हो···और अब तो तुम मुझे भी सट समझते होगे जो दूसरों को नतिकता के लेक्चर पिलाता है। तुम अब शतरंज के मँजे हुए खिलाड़ी हो, भला हममें से तुम्हें कौन समझ सकेगा। तुम अपने भीतर एक पवित्र चिंगारी महसूस करते हो···एक असाधारण पुरुष, जिसके सामने एक महान् लक्ष्य है ! वे लोग कितने बौड़म, नीरस और बेवकूफ़ हैं जो शतरंज की चमत्कारपूर्ण चालें नहीं समझते ! तुम और तुम्हारा महान् भविष्य और उनके सामने स्कूल, मेट्रिक की परीक्षाएँ जैसी छोटी-मोटी झंझटें···फिजूल की परेशानियाँ; क्यों ठीक है न ! तुम अभी से अपने को दुनिया के सबसे बड़े चैम्पियन समझने लगे हो।"

वह चुप था और आँखें जमीन पर गड़ी थीं। लड़कियों की-सी लम्बी पलकें रह-रहकर काँप जाती थीं। जिन बातों के लिए मैंने उसे कोसा था, दरअसल वह न केवल उनके बारे में सोचता था बल्कि उसका उसमें गहरा विश्वास भी था जिसके लिए वह दुनिया-भर से लड़ सकता था।

"अच्छा, अब दफ़ा हो।" मैंने कहा, "अगली टर्म से पहले मुंह मत दिखाना...और जब आओ तो अपनी स्कूल की रिपोर्ट लाना मत भूलना।"

उसने मुझे देखा जैसे पहचानता न हो।

बाहर जाते हुए उसका चेहरा बिलकुल लाल हो गया था।

५

उन दिनों मैं यूजिन से तीन वर्ष छोटा था। मेरे लिए नवीं कक्षा की शुरुआत बहुत संकटपूर्ण रही। मुझे पता चला कि शहर में कोई डॉ० लैंज आये हैं जो गणित की ट्यूशनें लेते हैं। उनके आने से मेरी आमदनी का ज़रिया खत्म हो गया। पहले मैं ही पांच क्राउन लेकर अपने सहपाठियों और दूसरे छात्रों के सवाल हल कर दिया करता था। अब वे मेरे पास न आकर डॉ० लैंज के घर अड्डा जमाते थे। डॉ० लैंज के प्रति मेरा मन ईर्ष्या से भर उठा। स्कूल की परीक्षाओं के दिन लैंज का एक विद्यार्थी सवालों के परचे को बाहर गलियारे में ले जाता और पन्द्रह मिनट बाद ही उत्तरों समेत लौट आता। "यार, आदमी जीनियस है।" लड़के कहते, "सारी थ्योरमें ज़ुबानी याद हैं।" आश्चर्य से उनकी आँखें फैल जातीं। ऊपर से मैं यह दिखाने का उपक्रम करता कि मुझे डॉ० लैंज में कोई दिल-चस्पी नहीं, किन्तु जब कभी मैं लोअर गेट के सामने से गुज़रता, जिसके

आगे डॉ० लैंज के मकान पर देवदूतों के भित्तिचित्र रोशनी में चमकते दिखायी देते, मेरा मन उन धनिक छात्रों के प्रति ईर्ष्या से भर उठता, जो किसी भी समय डॉ० लैंज के घर जा सकते थे। स्वयं लैंज मुझे अजब रहस्यमय आदमी जान पड़ते··· एक पहेली की तरह दुर्गम। पता नहीं, वह हमारे शहर में आकर क्यों रहने लगे थे। वह न स्वयं उस जगह के बाशिन्दा थे, न ही कोई उनके सगे-सम्बन्धी वहाँ रहते थे। वह मध्ययुगीन गेटवे के पीछे रहते थे, जिसके बन्द और तंग गलियारे मुझे पुराने जमाने की काल-कोठरियों और यातनागृहों की याद दिलाते थे। उनका पेशा भी मुझे काफ़ी रहस्यमय जान पड़ता था। शायद पहले कभी वह नक्षत्र-वैज्ञानिक रह चुके थे। उन्हें देखकर मुझे लगता था मानो वह किसी अजीब बीमारी के शिकंजे में फँसे हों···एक ऐसी बीमारी जो उनकी काठ-सी निर्जीव टाँगों से ऊपर उठती हुई बाकी देह में फैल रही थी और जो एक दिन उनके अद्‌भुत मस्तिष्क को पकड़ लेगी, जिसमें न जाने कितने फार्मूले, अंक, नक्षत्र-मंडल, गणित की थ्योरमें और अन्य रहस्यपूर्ण जंत्र-यंत्र भरे पड़े थे।

क्लास के लड़कों से डॉ० लैंज को पता चल गया था कि मैं गणित का सर्वश्रेष्ठ छात्र हूँ। एक दिन उनकी ओर से मुझे यह सन्देशा मिला कि वह मुझसे मिलना चाहते हैं।

गलियारे में सिर्फ़ एक नंगा बल्ब टिमटिमा रहा था और दीवारों से नये पुते हुए प्लास्टर की गन्ध आ रही थी। मैंने दरवाजा खटखटाया। दोपहर की धूप में पुराने फ़र्नीचर से भरा वह कमरा काफ़ी रंग-बिरंगा-सा दिखायी देता था। सूरज की तिरछी किरणों में सिगरेटों का सफेद नीला धुआँ उड़ रहा था। कमरे की खिड़की से शहर की दीवारों के पिछवाड़े फैले सुन्दर बागीचे दिखाई दे जाते थे। डॉ०लैंज की क्लास खत्म हो चुकी थी, मेज़ के इर्द-गिर्द पोकोर्नी, सुदा और बीज़ोवा बैठे थे और सिगरेटें पी रहे थे। मुझे देखते ही सबने एक स्वर में कहा, "हैलो!" उनके चेहरों से जान पड़ता था, मानो वे उस घर के पुराने रसे-बसे निवासी हों।

"आओ...आओ ! मैं डॉ० लैंज़ हूँ। इधर बैठो ! सिगरेट पियोगे ?"

पोकोर्नी के हाव-भाव से लगता था मानो वह घर का ही आदमी हो। उसने सौ सिगरेटों वाला सिगरेट-केस मेरे आगे खोल दिया। सहसा उन सबके बीच मुझे अपनी उपस्थिति असंगत-सी जान पड़ी। डॉ० लैंज़ ने एक मोटे ऊन वाला, घर का बुना स्वेटर पहन रखा था। कोरे, सस्त कॉलरों के बीच टाई लटक रही थी। उन्होंने अपनी ऐनक उतार दी। उनकी पलक-हीन, सुर्ख आँखें पानी में तैरती-सी जान पड़ती थीं। वह मुंह मोड़कर मुस्करा रहे थे। बाद में मुझे पता चला कि वे हमेशा मुस्कराते रहते हैं। बहुत बाद में पता चला कि वह मुस्कराते कभी नहीं, सिर्फ दूसरों को ऐसा भ्रम होता है कि वे मुस्करा रहे हैं।

"मुझे पता चला कि तुम अंकों के उस्ताद हो !" उन्होंने मुझसे कहा, "मुझे खुशी है कि एक गणितज्ञ से परिचय पाने का अवसर मिला। ये लोग या यह महिला ट्रिनोमियल इक्वेशन को शायद ज़िन्दगी-भर नहीं समझ सकेंगे।"

"ओह, डॉक्टर !" सुदा ने कहा।

"मीरेक तो जादूगर है !" पोकोर्नी ने कहा। मेरा चेहरा लाल हो गया। वीजोवा ने अलसायी आँखों से मेरी ओर देखा, मेरा चेहरा फिर लाल हो उठा...क्लास में वीजोवा के उरोज सबसे बड़े थे।

"अभी पता चल जाता है।" डॉ० लैंज़ ने कहा।

"क्या तुमने 'होम-वर्क' पूरा कर लिया ?"

मुझे गुस्सा आ गया।

"अभी नहीं", मैंने तनिक झल्लाये स्वर में कहा। 'आखिर तुम मेरी परीक्षा लेने वाले कौन ?' मैंने मन-ही-मन कहा। उस क्षण मेरी आँखों के सामने पाँच-पाँच क्राउन के नोट भी घूम गये जो पहले मेरे सहपाठी मुझे अपना 'होम-वर्क' पूरा करने के एवज़ में दिया करते थे, और जो अब इस आदमी की जेब में चले जाते हैं।

"अच्छा, लिखो !" डॉ० लैंज़ ने कहा और एक लाइनदार कागज मेरे आगे फैला दिया। उनके हाथ बराबर काँप रहे थे। लगता था जैसे उन पर लाल फोड़ों के सूखे निशान हों। मैंने एक पैंसिल उठा ली। एक नीले फूलदान में नयी, नुकीली पेंसिलों का गुच्छा रखा था। आज तक मैंने कभी पेंसिलों को फूलदान में नहीं देखा था। बीज़ोवा ने एक बार फिर अलसायी नज़रों से मेरी ओर देखा। सुदा और पोकोर्नी ने बतियाना बन्द कर दिया और चुपचाप कुर्सी खींचकर बैठ गये। लैंज़ सवाल लिखवाने लगे। मैं तनिक उत्तेजित-सा हो गया था। मुझे मालूम था कि सारी क्लास की इज्ज़त मुझ पर निर्भर करती है। सवाल काफ़ी आसान था।

"फर्स्ट क्लास !" उन्होंने उत्तर देखकर कहा। उनका काँपता हाथ मेज़ के नीचे गया, मकान में घण्टी बजने की आवाज सुनाई दी। कुछ देर बाद ही एक उनींदी, स्थूलकाय स्त्री कमरे में आयी।

"एनी, शराब की एक बोतल तो लाओ।" डॉ० लैंज़ ने कहा।

इतनी-सी सफलता मुझे प्रोत्साहित करने के लिए काफ़ी थी।

"क्या यह सच है कि तुम्हें सब लौगारिथमें ज़ुबानी याद हैं ?" डॉ० लैंज़ ने सिगरेट-होल्डर में सिगरेट खोंसते हुए पूछा।

"बेशक, यह सच है !" पोकोर्नी ने कहा।

"मुझे कुछ लौगारिथमें याद हैं।" डॉ० लैंज़ ने धुआँ उगलते हुए कहा।

"लेकिन इसमें कोई खास करामात नहीं है। गणित में स्मरण-शक्ति का कोई महत्त्व नहीं···दरअसल स्मरण-शक्ति से मुझे काफ़ी नफ़रत है। मेरे-जैसे लंगड़े-लूले आदमी को स्मृतियाँ परेशान नहीं कर सकतीं। स्मृतियों के लिहाज़ से मैं एक स्वस्थ आदमी हूँ।"

मेरी पेंसिल हाथ से छूट गयी, उसे उठाने के लिये जब मैं नीचे झुका, मुझे डॉ० लैंज़ के पैर दिखाई दिये। काली चप्पलों में वे काठ-से

निर्जीव और शिथिल दिखाई दे रहे थे। लैंज़ उन्हें एड़ियों के सहारे टिका-कर वैठे थे।

"शतरंज खेलते हो ?" उन्होंने सहसा मुझसे पूछा।

"हाँ...लेकिन बहुत खराब !" मैंने कहा।

"मैं समझता था, शायद तुम अच्छे खिलाड़ी होगे। अच्छे गणितज्ञ हमेशा शतरंज के माहिर होते हैं। यहाँ ऐसा कोई नहीं, जिसके साथ मैं खेल सकूँ।"

"वैंक-क्लर्क मि० प्रोकोप शतरंज खेलते हैं...मुमकिन है, वह आज यहाँ आयें।"

"मैं उन्हें जानता हूँ।" सुदा ने कहा, "व्यायामशाला में वह हमें क़वायद करना सिखाते हैं।"

"वैंक के क्लर्कों के साथ मेरे अनुभव ज्यादा अच्छे नहीं और जहाँ तक ड्रिल-मास्टरों का सवाल है, उनसे खुदा बचाए।" डॉ० लैंज़ ने असहमति में सिर हिलाते हुए कहा।

बीज़ोवा अपने गिलास से शराब पी रही थी। उसने स्वप्निल-भाव से कागज़ पर 'ए' लिखा और फिर जल्दी से उसे काट दिया। मुझे याद आया 'ए' के मानी एडुअर्ड वोन्दराक।

"ज़रा देखें तो !" लैंज़ ने कहा, "पोकोर्नी, शतरंज लाओ !"

पहली वाज़ी शुरू होने के पहले ही खत्म हो गयी। लैंज़ ने शतरंज की मुहरों को एक तरफ़ सरका दिया।

"अच्छा महानुभावो... अब मैं अकेला रहना चाहता हूँ। आज मैं वहुत थक गया हूँ।"

उन्होंने विदा के समय किसी से हाथ नहीं मिलाया। वे चुपचाप मेज़ पर नज़रें गड़ाये वैठे रहे। लगता था, जैसे उनकी दिलचस्पी साहसा मर

गयी है। घर की ओर जाते हुए मैं बहुत असन्तुष्ट-सा महसूस कर रहा था। मेरे मित्रों के उत्साह की कोई सीमा नहीं थी। मेरी आँखों में उन्होंने डॉ० लैंज़ की धाक बिठा दी थी और यह प्रमाणित कर दिया था कि डॉ० लैंज़ के बारे में उनका प्रोपेगेण्डा महज़ हवाई प्रोपेगेंडा नहीं है। मुझे शतरंज नहीं खेलनी चाहिए थी। अब डॉ० लैंज़ के घर जाने का मेरा कोई मुँह नहीं रह गया था। मैंने सब गुड़ गोबर कर दिया था। डॉ० लैंज़ के खेल में कुछ अजीब-सी क्रूरता, सतर्कता और दूरदर्शिता थी, जिसने मुझे हिला दिया था। उनकी पहली चाल से ही लगता था जैसे उनकी मुहरें एक लौहवत् नियति की तरह आगे बढ़ रही हों···एक चालाक मछुए के जीवन्त, फड़फड़ाते जाल की तरह। मैं सिर्फ़ एक मछली था, जिसे वह अपने जाल में फँसा रहे थे। उन्होंने मुझे पकड़ लिया था और खत्म कर दिया था। मुझे यह विचार असहनीय जान पड़ा कि अब वह अपनी आर्म चेयर में बैठे होंगे और मुझे निरा मूर्ख समझ रहे होंगे। "चलो, शतरंज की एक बाज़ी हो जाए।" खाने के बाद मैंने अपने भाई एलबर्ट से कहा। मैं बहुत सावधानी से खेल रहा था और दो बार मैंने उसे हरा दिया। किन्तु एलबर्ट शतरंज में बुद्धू था और मेरी कोशिशों के बावजूद शतरंज की मुहरें मुरदा-सी निर्जीव पड़ी रहीं···एक झोल पड़े जाल की तरह जिसमें बिजली का करण्ट नहीं था, जिसे मैंने डॉ० लैंज़ के खेल में देखा था।

दूसरे दिन शाम को मैंने दोबारा डॉ० लैंज़ के दरवाज़े की घण्टी बजायी। वह बिना कॉलर लगाए बैठे थे और डम्पलिंग और अण्डे खा रहे थे।

"मुझे शतरंज खेलना सिखा दीजिए।" मैंने छूटते ही कहा।

"गणित पढ़ाने के लिए मैं आठ क्राउन फ़ी घण्टा लेता हूँ। शतरंज के लिए दस क्राउन लूँगा।"

काँटे पर अटका लुकमा उनके मुँह की तरफ़ बढ़ रहा था। उन्होंने झट उसे मुँह में दबा लिया··· कुछ उसी तरह जैसे छिपकली मक्खी को निगल जाती है।

"मेरे पास पैसे नहीं हैं।" मैंने अनिश्चित स्वर में कहा।

"नहीं हैं! तुम्हारे पिता क्या काम करते हैं?"

"वह दरज़ी हैं।" मैंने कहा।

"ओह! अच्छा सुनो··· वह मेरे लिए एक सूट बना सकते हैं और उसके एवज़ में मैं तुमको शतरंज सिखा दूंगा।"

उन्हें अपना मजाक पसन्द आया और वह कुछ उसी तरह हँसने लगे जैसे घोड़े हिनहिनाते हैं। उन्होंने अपनी किताबों की अलमारी की ओर इशारा किया, "मेहरबानी करके उन सब किताबों को यहाँ ले आओ, जो पहली दराज़ में रखी हैं। जर्मन समझ लेते हो?"

"थोड़ी-बहुत। यहाँ थोड़ी-बहुत जर्मन सभी को आती है।"

वह पुस्तकों को टटोलने लगे। आखिर डुफ़सन की टेक्स्ट-बुक उठा ली और उसके पन्ने उलटने लगे। एक पन्ने पर उन्होंने पेंसिल से निशान बना दिया।

"इस पन्ने तक तुम्हें यह किताब बड़ी होशियारी से पढ़नी होगी··· दिल लगाकर। अच्छी बुनियाद के लिए यह ज़रूरी है। फिर खेलना शुरू करेंगे। देखते हैं, क्या होता है।"

मैंने उन्हें धन्यवाद दिया। मुख-पृष्ठ पर उनके टेढ़े-मेढ़े, जैसे नशे में लिखे गये हों, वैसे हस्ताक्षर थे: डॉ० लैंज़, मोन्टे कार्लो, १९०९। मुझे याद आया, डॉ० लैंज़ नक्षत्र-वैज्ञानिक और गणितज्ञ थे, विदेशों की यात्रा करते थे। मोन्टे कार्लो में रूले पर जुआ खेला जाता है···सम्भव है, उन्होंने जीतने की कोई तरकीब ईजाद की हो। खिड़की के पीछे आकाश में अँधेरा घिरने लगा था। पक्षियों की अलमस्त चहचहाट सुनायी दे रही थी, बागीचे में पत्ते हल्के-से सरसरा जाते थे।

"रात," डॉ० लैंज़ ने कहा, "कुछ देर में परिन्दे सोने चले जायेंगे उनके बाद लोग। तुम आराम से सोते हो··· मेरे दोस्त?"

"माँ कहती हैं कि मैं घोड़े बेचकर सोता हूँ।"

"पिछले दस वर्षों से मेरी आँख नहीं लगी… जिसका मतलब यह है कि मैं तिरेसठ वर्ष का नहीं, तिहत्तर वर्ष का हूँ। शायद इसलिए मुझे अपनी बीमारी के प्रति आभारी होना चाहिए कि उसकी वजह से जितने साल मेरी ज़िन्दगी के कम हो जायेंगे, उतने ही साल जागे रहने के कारण मुझे वापस मिल जायेंगे। लेकिन देखो…आभारी मैं नहीं हो पाता। उन अन्तहीन रास्तों में जो एक महत्त्वपूर्ण चीज़ मैंने सीखी है, वह यह है: एक आदमी की ज़िन्दगी उसी क्षण खत्म हो जाती है जब वह दूसरे लोगों की ज़िन्दगी में हाथ बटाना बन्द कर देता है। मुझमें और बाहर जो सेब का वृक्ष है, उसमें कोई अन्तर नहीं। हम दोनों ही नहीं चल सकते। मुझमें मस्तिष्क ज़रूर है, लेकिन वह एक बोझ से अधिक कुछ नहीं।

उस शाम मेरी किस्मत ने निर्णयात्मक मोड़ ले लिया था। डॉ० लैंज़ को दोबारा मुझे मेहनत करने के लिए प्रार्थना नहीं करनी पड़ी। उसकी ज़रूरत भी नहीं थी। जिस दुनिया में मैं अब तक जीता आया था, वह मुझसे बहुत पीछे छूट गयी। मैं मूक-शक्ति के एक ऐसे चुम्बक-क्षेत्र में चला आया था, जहाँ निरंतर बदलते हुए रिश्तों की एक रहस्यमय व्यवस्था थी…एक ऐसी व्यवस्था जो हर खेल में एक जैसी थी, किन्तु जिसे हर बार नये सिरे से खोजना पड़ता था। कभी-कभी मैं उसकी निपट उदासीन अक्षुण्णता पर हताश-सा हो जाता था, किन्तु फिर ऐसे भी सुखद क्षण आते जब मेरा मन उल्लास से भर उठता और मुझे लगता कि मैं सीख रहा हूँ, समझ रहा हूँ, अपनी सीमाओं से मुक्त हो रहा हूँ। डॉ० लैंज़ द्वारा बनायी गयी दर्जनों बाज़ियों ने इस शाही खेल की अन्तहीन, नाटकीय संभावनाओं को मेरे सामने खोल दिया। रात के समय मुँदी पलकों के पीछे मुझे लड़ाई का मैदान दिखाई देता और मैं लड़ने के लिए, हमला करने के लिये उतावला हो जाता। उसकी अपनी एक अलग ज़िन्दगी…वास्तविक ज़िन्दगी से अधिक जीवन्त, अधिक आकर्षक, अधिक चकाचौंध कर देने वाली। वास्तविक ज़िन्दगी मेरे लिए एक व्यवधान-सा बन गयी। मैं हर दिन गहरी आतुरता से अगले दिन की प्रतीक्षा

करता था जब मैं डॉ० लैंज़ के घर भागकर खेल शुरू कर सकूँ। मैं अब उनके घर हर रोज़ बेनागा जाने लगा था। मैं अब जीतने लगा था।

क्या मैं यूजिन को नहीं समझूँगा ? वह ज़िन्दगी के ऐसे सनसनीखेज़ पहलू से गुज़र रहा है, जिसे मैंने स्वयं पच्चीस वर्ष पहले भोगा था। मैंने उसके हाथ में वही चाबी दे दी थी, जो मैंने मुद्दत पहले डॉ० लैंज़ से प्राप्त की थी। यदि यूजिन के ज्वरग्रस्त नशे को देखकर मैं झुँझला उठा था, तो सिर्फ़ इसलिए नहीं कि उसकी माँ ने मुझसे शिकायत की थी। कुछ अर्सा पहले तक मैं डॉ० लैंज़ को अपना प्रथम शिक्षक मानता आया था। अब मैं जितना अधिक सोचता हूँ, मुझे लगता है कि वह मेरे शिक्षक नहीं थे, वह उन व्यक्तियों में से थे, जो सिर्फ़ दूसरों को गुमराह करते हैं।

६

"मिस साहिबा अन्दर बैठी हैं।" मोरावा रेस्तराँ के क्लॉक-रूम की स्त्री ने मुझसे कहा। ओवरकोट उतारते हुए मेरी नजर रसोई के दरवाज़े के सामने वाली लम्बी मेज़ पर पड़ गयी, जो अब तक पूरी तरह भर चुकी थी। यों भी जिस मेज़ के सामने हौंजा रोहान बैठ जाता, वह तुरन्त भर जाती। हर खुशमिज़ाज आदमी की तरह हौंज़ा हमेशा लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता था। उसके अलावा वहाँ जुज़ा, जोसेफ़ और 'अपने थियेटर' के सुर्ख बालों वाले मेयर भी दिखाई दिये। मेज़ की ओर से आने वाले हँसी के ठहाके मुझे सुनायी दे जाते थे, जिसमें जुज़ा की भद्दी, कर्कश आवाज़ साफ पहचानी जा सकती थी। जुज़ा की नज़र मुझ पर पड़ गयी और सहसा उसके चेहरे पर एक ग़मगीन मुद्रा सिमट आयी।

जुज़ा से उन्हें मेरे 'शोक' के बारे में पता चल गया था। चुपचाप उन्होंने मुझसे हाथ मिलाया। उनके चेहरों पर दुविधा का हल्का-सा

आभास था, जो हमेशा पराये दुःख को देखकर घिर आता है। सिर्फ़ मेयर ने—जिसे मैं सबसे कम जानता हूँ, मेरी ओर अपनी बत्तख़-जैसी आँखें उठाकर संवेदनापूर्ण स्वर में कहा :

"मुझे आपसे हमदर्दी है, कॉमरेड ! सचमुच गहरी हमदर्दी है।"

कुछ दिन पहले ही किसी ने मुझे बताया था कि उसके पिता किसी गिरजे में सेक्सटन हैं।

वे खाना खा चुके थे। जोसेफ़ ने वोदका पीते हुए मुझसे धीमे स्वर में माँ की बीमारी के बारे में पूछा। मेज़ पर बैठे सब लोग बड़े ध्यान से एक मामूली घटना के बारे में सुनने लगे, जो मैं उन्हें सुना रहा था।

"कमबख़्त यह दिल की बीमारी !" लुदवीक कारा ने कहा और फिर वह अपने पिता की बीमारी के बारे में विस्तार से बताने लगा। मुझे ख़ुशी हुई···बातचीत मेरी माँ से हटकर बीमारी जैसे शाश्वत विषय पर आ टिकी थी, जो एक ऐसी तटस्थ और सुरक्षित ज़मीन थी जिस पर सब लोग निश्चिन्त होकर साँस ले सकते थे। वेटर को ऑर्डर देने के बाद मैंने पाया कि हौंज़ा ने अपना किस्सा, जो मेरे आने पर बीच में ही छूट गया था—नये सिरे से शुरू कर दिया है।

ज़ुज़ा मेरे हाथ को सहलाने लगी। मैं हौंज़ा रोहान के किस्से को सुनने की कोशिश कर रहा था। उसका व्यक्तित्व मुझे मंत्रमुग्ध-सा कर देता है। लेखक बनने से पूर्व वह बढ़ई और सिपाही रह चुका था। ठिगना क़द, तगड़ा और हृष्ट-पुष्ट···लगता है; जैसे अभी-अभी कसरत करके लौटा है। अगर जहाज़ डूब जाने के कारण मुझे अकेले टापू पर किसी के साथ रहना पड़े, तो मैं हौंज़ा के साथ रहना चाहूँगा। वह आसानी से एक झोंपड़ी खड़ी कर देगा, कम्बलों को बुन देगा और आदमख़ोर क़बायलियों को चुटकी मारकर भगा देगा। हौंज़ा हमेशा उस जगह मौजूद रहता है, जहाँ कुछ हो रहा होता है। लगता है, उसके कहीं जाने की देर है और वहाँ कुछ ख़ुद-बख़ुद होने लगेगा। मेरे संग कभी कुछ नहीं होता, कुछ

ऐसा नहीं होता जिसे मैं किस्सा बनाकर दूसरों को सुना सकूं। अपने घर के बारे में भी नहीं, जहाँ मैं पिछले बारह वर्षों से रह रहा हूँ। मैं केवल अपनी स्मृतियाँ दोहरा सकता हूँ…"लाहोरी शहर में हमारा घर था…"

मेरी ज़िन्दगी के पिछले चन्द साल एक-दूसरे से बिलकुल गुंथ गये हैं—हर साल दूसरे साल की ही तरह नीरस और स्याह है। उन लोगों के बीच जो हौंज़ा को नहीं जानते, मैं अक्सर उसी के बारे में किस्से सुनाना पसन्द करता हूँ।

हौंज़ा अभी कुछ दिन पहले लिपना झील से लौटा था। वह वहाँ मछलियाँ पकड़ने गया था, लेकिन पहले ही दिन जंगल के लकड़हारों के एक झुंड से दोस्ती गाँठ ली। बस, फिर मछलियों को भूलकर पूरे हफ़्ते-भर उनके साथ पेड़ों को काटता रहा।

"मुझे हमेशा बड़ा अजीब लगता है…कभी देखा है, पेड़ गिरने से पहले उसका तना किस तरह थरथराता है!" एक ही क्षण में उसने अपने जंगली दोस्तों के आधादर्जन सजीव चित्र पेश कर दिये। वह सहसा उठ खड़ा हुआ…उसे प्राग के दूसरे छोर लिबेन्य में किसी काम पर जाना था।

मैं बिना किसी स्वाद के अपना भोजन निगल रहा था। जोसेफ़ ने एक और वोद्का का ऑर्डर दिया।

"यह अजीब बात है," कारा ने क़हा, "अगर हौंज़ा उसी तरह लिख सके, जिस तरह सुनाता है, तो चमत्कार पैदा हो जाए। ईश्वर ही जाने क्या हो गया है उसे! साहित्यिक समाचार में उसकी नयी कहानी पढ़ी? बिलकुल दम नहीं!"

सब सहमत हुए कि वह एक कमज़ोर कहानी थी। सब इस बात से भी सहमत हुए कि 'आक्रमण' के बाद हौंज़ा की प्रतिभा तेज़ी से लुप्त होती जा रही है।

"बकवास !" जोसेफ़ ने कहा, "अगर हौजा ने 'आक्रमण' उपन्यास न लिखा होता, तो तुम ऐसी बातें कभी न करते। हौजा आजकल वैसा ही लिखता है, जैसे दूसरे लेखक···यानी बहुत अच्छा नहीं। लेकिन ख़ुदा का···'आक्रमण' एक ऐसी छोटी-सी ख़ूबसूरत किताब है जिसका साहित्यिक प्रश्नों से कोई संबंध नहीं···इसीलिए साहित्य में हौजा का नाम हमेशा सुरक्षित रहेगा।" यह कहकर जोसेफ़ आधुनिक उपन्यास के संकट के बारे में अपने विचार प्रस्तुत करने लगा। उसकी राय में आज की कोई भी महान् कलाकृति, चाहे वह उपन्यास हो या फ़िल्म, ऐसी नहीं है जिसका संबंध युद्ध या क्रान्ति से न हो। हौजा का 'आक्रमण' भी एक युद्ध-संबंधी उपन्यास है। आधुनिक जीवन इस क़दर संगठित हो चुका है कि हर आदमी किसी-न-किसी क्षेत्र में विशेषज्ञ है···हर चीज़ अपने में इतनी जटिल हो गयी है कि जीवन का पारस्परिक तालमेल नष्ट होता जा रहा है। उपन्यासों और कहानियों को पढ़कर लगता है मानो हम माइक्रोसकोप के माध्यम से दुनिया देख रहे हैं। युद्ध या क्रान्ति के दौरान हर चीज़ की रूपरेखा स्पष्ट हो जाती है··· हम शत्रु को पहचान सकते हैं, आदमी के साहस को सही-सही नाप सकते हैं। एक तरह से आधुनिक जीवन की यह नाटकीय सहजता कला की शाश्वत माँगों को पूरा करती है। इस सिलसिले में जोसेफ़ ने शोलोख़ोव और हेमिंग्वे के उदाहरण दिये ···हमारे युग के दो सबसे महान् लेखक। क्रान्तियों के पीछे हेमिंग्वे की बेचैन खोज (या साँड़ों के साथ द्वन्द्व-युद्ध—हर वह चीज़ जिसमें ज़िन्दगी की मौलिक, मांसल सहजता मौजूद है) जोसेफ़ के मत का समर्थन करती थी।

एक धुआँधार बहस छिड़ गयी।

"बेकार की बात !" भूरे बालों वाला मेयर ज़ोर से चीख़ उठा "तुम उपन्यास का संकट युद्ध के द्वारा सुलझाना चाहते हो। वाह, क्या ख़ूबसूरत तरकीब सुझायी है !"

"यार, तुम हर चीज़ को ज़रूरत से ज़्यादा आसान बना कर बिगाड़ देते हो !" जोसेफ़ ने शान्त-स्वर में कहा। उसने एक और वोद्का का ऑर्डर दिया।

सामने बैठ जाता हूँ और एक घंटा, दो घंटे, दो खूबसूरत घंटों तक काम करता रहता हूँ, क्योंकि मुझमें अब गहरा आत्मविश्वास है और हर चीज़ मुझे ठीक और ठोस नज़र आती है। फिर घातक, नियमित रूप से वह घड़ी आती है जब मैं आसान-से-आसान विचार को भी अभिव्यक्त करने में अपने को असमर्थ पाता हूँ। मैं लिखे हुए वाक्यों को काटता हूँ, सिगरेट-पर-सिगरेट सुलगाता हूँ, कागज़ों की चुन्दियाँ बनाकर फेंकता हूँ, मेरा पेट गड़बड़ करने लगता है। मैं आसान-से-आसान विचार अभिव्यक्त नहीं कर पाता, क्योंकि सच पूछो तो तब मेरे पास कोई विचार ही नहीं रह जाता है। मैं खिड़की के पास जाकर खड़ा हो जाता हूँ। बाहर का दृश्य असहनीय रूप से जाना-पहचाना है, असहनीय रूप से जड़ित है। बाल्कनी की कंक्रीट से बनी रेलिंग और उसके परे पड़ोसी के मकान की ढक्कन से ढकी चिमनी जिसे देखकर मुझे हमेशा अंग्रेज़ सिपाही का टोप स्मरण हो आता है, वर्शोविल्से की ढलवाँ छतें और उन सबके परे क्षितिज पर घुमड़ता फ़ेक्टरियों का धुआँ।

और तब मुझे लगता है, दुनिया जड़ित नहीं है, दुनिया के प्रति मेरी दृष्टि ही जड़ित है। शहर के ऊपर रहकर मैं गाड़ियों की सीटियाँ, इंजनों की धमधमाहट, भीड़ का कोलाहल, एक-दूसरे को काटती, सरसराती आवाज़ें सुनता हूँ, मेरे नीचे ज़िन्दगी का मैदान फैला है किन्तु मैं रहता हूँ, छतों के ऊपर अपने एक कमरे वाले फ़्लैट में, जहाँ से मैं सिर्फ़ इस ज़िन्दगी को देख सकता हूँ, उसके साथ अपना नाता नहीं कायम कर सकता। लड़ाई के दिनों में रोज़ी ने बेचारे इगोन को इसी कमरे में छिपाया था। वह उसी जगह पर खड़ा होकर शहर का दृश्य देखा करता था, जहाँ आज मैं खड़ा हूँ। खिड़की के परे सारी दुनिया के दरवाज़े उसके लिए बन्द थे। उसके कोट पर डेविड का सितारा था* ?

---

* युद्ध के दिनों में नात्सी सत्ताधारियों की आज्ञानुसार हर यहूदी को अपने कोट पर यह 'सितारा' लगाना पड़ता था, ताकि उसे अन्य लोगों से अलग करके पहचाना जा सके।

और वह बाहर नहीं निकल सकता था। लेकिन मैं ? मैं छिपकर नहीं रह रहा··· मैं स्वतंत्र हूँ, मैं जहाँ चाहूँ जा सकता हूँ, टहल सकता हूँ, चीख-चिल्ला सकता हूँ, पाँव पटक सकता हूँ। किन्तु सच पूछो, तो मैं डॉ० लैंज़ के समान हूँ जो अपनी लुंज टाँगों के कारण सिर्फ़ एक कमरे में··· एक खिड़की के सामने बैठे रहा करते थे या इगोन के समान जिसकी आँखे पिछले चौदह वर्षों से इस दुनिया को नहीं देख रहीं। कुत्तों और यहूदियों के लिए वर्जित ! मेरे सब दरवाज़े किसने बन्द कर दिये ? मेरे कोट पर कौन-सा निशान है ? मैं ग्रामोफोन खोलता हूँ। रिकॉर्ड घूमता है। क्वाटरेट का संगीत कमरे में एक अजीब-सी चाह भर देता है, एक मदमाती धारा मुझे धीरे से पकड़ती है और अपने साथ बहा ले जाती है। अपनी ओर खींचते हुए··· मुझे पुकारते हुए ! किस दिशा में ? किस लिए ? मैं यूँ ही एक किताब उठा लेता हूँ··· घंटों पीठ के बल लेटा रहता हूँ, बिना हिले-डुले, बेकार। चारों ओर लोग अपनी-अपनी ज़िन्दगी जी रहे हैं और मैं शोलोखोव, तोलस्तोय, मोपासाँ और ट्वेन के पन्नों में खो जाता हूँ··· लगता है, धीरे-धीरे मैं सुख और संतोष के स्वर्ग में पहुँच गया हूँ। क्या सचमुच स्वर्ग का अस्तित्व है ? है क्यों नहीं, मैं उसमें रह चुका हूँ। मैं उसमें दोबारा लौटना चाहता हूँ। किन्तु शाम होते ही मेरा अकेलापन मुझे शहर की तरफ खींच ले जाता है। मैं बात-चीत करना चाहता हूँ, लोगों से मिलना चाहता हूँ, उन्हें देखना चाहता हूँ। मोराबा में या कहीं और जोसेफ़, रोहान और लुदवीक कारा बैठे होंगे। हम बातें करेंगे, खाना खायेंगे, हँसी-मज़ाक करेंगे, गम्भीर हो जायेंगे और फिर पीने लगेंगे। और फिर सहसा-एक बोझिल-सी थकान हम पर उतर जायेगी, बातचीत ठंडी पड़ने लगेगी, हर कोई अपने खोल में लौट जायेगा, हर कोई जल्दी-जल्दी कहीं अकेले में या दूसरी जगह जाने की तैयारी करने लगेगा। और मैं ? मैं कहाँ जाऊँगा ? अपने घर, अपने कमरे में···

७

मेरे पास समय काफ़ी था। जाहोरी जाने वाली एक्सप्रेस शाम को सवा सात बजे छूटती थी। मैं जुजा के साथ उसके बैंक तक चला आया। उस दिन वह मेरे प्रति अत्यन्त स्नेहपूर्ण थी। उसने वादा किया कि वह शाम को स्टेशन आयेगी। समय ठहर गया था। मैं सारा दिन घर में ही रहा···लगता था जैसे मैं वेटिंग-रूम में बैठा हूँ, क्योंकि वेटिंग-रूम में सेकेण्ड मिनटों से और मिनट घंटों से ज्यादा लम्बे होते हैं। इस बीच मैंने श्रीमती फियाला को फोन पर कह दिया कि अगले तीन दिन मैं दफ़्तर में गैरहाजिर रहूँगा। मैंने अपना सूटकेस तैयार किया और ओवरकोट की आस्तीन पर शोक की काली पट्टी बाँध ली। पट्टी बाँधते हुए मैं पसीने से सराबोर हो गया और सोफ़ा पर जाकर लेट गया। नब्ज की गति देखी···एक मिनट में एक सौ बीस। एक रात अकेला ही मैं इस कमरे में मर जाऊँगा···संभव है दो दिन तक उन्हें पता ही न चले और

बाद में पोर्टर को कमरे का दरवाजा तोड़कर भीतर आना पड़ेगा। या शायद जूजा आयेगी··· अजनबी-सी, स्वस्थ और उदासीन। एक सप्ताह बाद ही वह अपने किसी नये प्रेमी से कहेगी कि किस तरह मैं उसकी गोद में मरा, उसी तरह से जिस तरह उसने मुझे अपने पति के बारे में बताया था जिसने उसकी पीठ पर चाकू भोंका था। मैं पीठ के बल लेटा रहा··· मेरी समूची देह मेरे हृत-स्पन्दन को झेल रही थी। कितने अर्से से मैं डॉक्टर के पास नहीं गया ? एक वर्ष··· या दो ? हमेशा मैं यह सोचता था कि माँ से पहले मैं मरूँगा और मेरी मृत्यु माँ को जिन्दगी-भर सालती रहेगी। एक अजीब-सा सन्नाटा मेरे कानों में गूँज रहा था··· सीपी में गरजते हुए समुद्र की तरह। मैंने अपना हाथ उठाया। मेरी कलाई पर, उन दो नीली नसों के पास, जिनमें से एक अँगूठे के नीचे गुजरती हुई हथेली तक चली गयी थी, मेरी नब्ज खाल के नीचे काँप रही थी। 'माँ' मेरी आँखों में आँसू उमड़ आये। मैं उनके लिए रो रहा था और अपने लिए भी।

तीन बजे के करीब यूजिन ने फोन किया।

"हलो," मैंने समझौते-भरे स्वर में कहा।

वह चुप था। टेलीफोन पर उसकी गरम तनाव-भरी साँसें सुनायी दे रही थीं।

"क्या बात है ? कुछ बोलते क्यों नहीं ?"

"अभी परीक्षाओं की टर्म बाकी है··· मैं पूरी कोशिश करूँगा।"

"ठीक है, यूजिन !" मैंने कहा।

"मुझे बहुत दुख है !"

"किस बात का दुख !"

"आप सुबह इस तरह नाराज हो गये··· मैं समझता हूँ, मेरी चाल बिलकुल ठीक थी।"

"मुझे खेद है कि मैं तुम पर इस तरह बरस पड़ा।"

"क्या वह ठीक चाल थी ?"

"पता नहीं यूजिन··· मैंने ठीक से तवज्जो नहीं दी।"

"क्या मैं आपसे कुछ पूछ सकता हूँ ?"

"जरूर।"

"माँ ने आपसे क्या कहा था ?"

"कुछ नहीं। स्कूल से तुम्हारे बारे में शिकायतें आयी थीं।"

"इसके अलावा और कुछ नहीं कहा।"

"नहीं··· और कुछ नहीं।"

"मैंने कुछ और सोचा था।"

"क्या सोचा था ?"

"अरे कुछ नहीं··· बेकार की बातें।"

"कुछ कहो भी।"

वह क्षण-भर के लिए झिझका।

मैं डर गया था। माँ··· सचमुच गुस्से में उबल रही थीं। कह रही थीं कि आप मेरे लिए अपने को अपराधी मानते हैं··· वगैरह-वगैरह।

"और अगर सचमुच मैं अपने को अपराधी मानता हूँ ?"

"कैसे ?"

"देखो यूजिन··· तुम अपने को इस तरह भाड़ में नहीं झोंक सकते। आखिर तुम्हारा क्या बनेगा ? तुम जानते हो, शतरंज एक खेल से ज्यादा कुछ नहीं।"

"मेरे लिए वह सिर्फ़ खेल नहीं है।"

"फिर क्या है ?"

"मालूम नहीं। मेरे लिए वह सब-कुछ है··· पता नहीं, आगे जाकर मैं क्या बनूँगा, इंजीनियर या जानवरों का डॉक्टर, लेकिन मेरे लिए हर

पेशा महज रोजी का साधन होगा। दिलचस्पी मेरी सिर्फ़ एक चीज में है··· और वह है शतरंज।"

"यूजिन··· तुम्हें पक्का विश्वास है कि तुम ग़लती नहीं कर रहे ?"

वह हड़बड़ा-सा गया। उसका स्वर, जो अब सहज होने लगा था, फिर लड़खड़ाने लगा।

"क्या अब आप मुझ पर विश्वास नहीं करते ?"

"ऐसा क्यों सोचते हो ?"

"एक तरह से आपने ही मुझे खोजा था··· मुझ पर इतना परिश्रम और समय लगाने वाले भी आप ही थे··· और इसका परिणाम भी कुछ खास बुरा नहीं निकला और अब अचानक··· शायद आप सोचते हैं कि मैं अच्छा खिलाड़ी नहीं बन सकूँगा।"

"बेशक, तुम अच्छे खिलाड़ी बनोगे," मैंने कहा।

"मैं आपको समझ नहीं पा रहा। आप शायद सोचते हैं कि मुझे कोई अच्छा-खासा पेशा चुनना चाहिए।"

"आसान शब्दों में शायद यही।"

"लेकिन शतरंज अब महज़ खेल नहीं रह गया है," उसने तनिक क्षुब्ध भाव से कहा, "हर वैज्ञानिक विषय की तरह वह भी एक विज्ञान है।"

"लेकिन खेल खेल ही रहेगा, यूजिन! शतरंज के अलावा वोरोनीक अपने क्षेत्र के अच्छे-खासे वैज्ञानिक भी हैं। मैं तुम्हें ऐसी बीसियों मिसालें··· "

"लेकिन मैं और आप दोनों ही जानते हैं कि असली हकीक़त क्या है," उसने उत्तेजित भाव से मेरी बात काटते हुए कहा, "एक खिलाड़ी जो अन्त-राष्ट्रीय खेलों में अपने देश की नुमायन्दगी करता है, अपनी फ़र्म में सिर्फ

नाम-मात्र के लिए काम करता है। उसका सारा समय तो घूमने-फिरने, लम्बी लीव की छुट्टियों में ही बीत जाता है। आज के जमाने में शौकिया खिलाड़ी का कोई महत्त्व नहीं। आप ही बताइए, शौकिया ऐक्टर या शौकिया गायक को आजकल कौन पूछता है ? और स्पोर्ट्समेन की पब्लिक तो ऐक्टरों और गायकों से कहीं ज़्यादा होती है··· अगर पब्लिक उससे व्यावसायिक स्तर की उम्मीद रखे, तो यह स्वाभाविक ही है।"

"तुम प्रोफ़ेशनल होना चाहते हो ?"

"मैं वही होना चाहता हूँ, जो आप हैं···टूर्नामेंट का शतरंज-खिलाड़ी और शतरंज का लेखक।"

मैं इस बातचीत से ऊबने लगा था। मुझे रह-रहकर अपने पर गहरी खीझ भी हो रही थी। फोन पर मैं यूजिन के सामने अपने निरे, व्यक्तिगत तर्क प्रकट नहीं कर सकता था और वह शायद यह समझ रहा था कि मेरे पास कोई तर्क ही नहीं है। आखिर मैंने यह धुंधला-सा वादा करके बहस खत्म कर दी कि अगले सप्ताह हम इस बारे में विस्तार से बातचीत करेंगे। फोन रखने के बाद मैं एक क्षण कुछ सोचता रहा और तब मुझे महसूस हुआ कि मेरे 'व्यक्तिगत तर्क' भी काफ़ी अराजक, अस्त-व्यस्त स्थिति में हैं। स्वयं अपने सामने उन्हें स्पष्ट करने के लिए मैं यूजिन को पत्र लिखने लगा और तब तक लिखता रहा जब तक स्टेशन जाने की घड़ी बिल्कुल निकट नहीं चली आयी। यह पत्र कभी खत्म नहीं किया गया और न ही कभी भेजा गया। कुछ देर पहले ही मैंने इसे अपने कागजात में ढूंढ निकाला था··· मैं समझता हूँ उसे यहाँ अक्षरशः उद्धृत करना तर्कसंगत होगा।

"आज सुबह, यूजिन, जब तुम आये, मैं गुस्से में तुम पर बिगड़ पड़ा था। तुमने मेरी झुंझलाहट का अपने तरीके से ही कोई अर्थ निकाला होगा। अनेक प्रकार के संशय तुम्हारे मन में उठ रहे होंगे ···शायद तुम सोच रहे होगे कि मैं तुम्हारे वर्तमान विद्यार्थी-जीवन और भावी नागरिक जीवन के कर्त्तव्यों को

सिर्फ़ इसलिए इतना महत्त्व दे रहा हूँ क्योंकि एक खिलाड़ी की हैसियत से तुमने मुझे निराश किया है। यदि यही शक तुम्हारे मन में है, तो तुम आराम की नींद सो सकते हो। तुम्हारी आँखों के सामने शायद मैं कभी न कह सकता, लेकिन चूँकि यह पत्र तुम कभी नहीं पढ़ोगे, मैं बेझिझक कबूल कर सकता हूँ कि तुममें असाधारण प्रतिभा है और एक दिन तुम शतरंज के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी बन सकोगे। अगर इस क्षण मेरे पीछे खड़े होकर तुम इन पंक्तियों को पढ़ रहे होते, तो अवश्य ही बहुत खुश होते। सम्भवतः तुम खुशी की झोंक में मेरे सुबह के उस विचित्र व्यवहार को भुला देते जब मैं बार-बार तुमसे कह रहा था कि शतरंज महज़ एक खेल है। तुमने मुझसे कहा था कि तुम वही होना चाहते हो, जो मैं हूँ··· टूर्नामेंट का खिलाड़ी और शतरंज का थियोरिटिशियन। शायद तुम दोनों ही बन सकोगे। तुम वही बन जाओगे जो आज मैं हूँ। तुम्हारी यह हार्दिक आकांक्षा है। लेकिन क्या तुम सचमुच जानते हो कि तुम वास्तव में किस चीज़ को पाने की आकांक्षा कर रहे हो? आज सुबह जब तुम मुझे शतरंज की बाज़ी की तरफ़ ले गये, मुझे लगा जैसे मैं आईने में देख रहा हूँ, जिसमें बीस वर्ष पहले का मेरा चेहरा झाँक रहा है। वह मेरी तरह है— सहसा मुझे खयाल आया··· बिल्कुल मेरी तरह··· और तब मैं गुस्से में फूट पड़ा। मैंने चाहे जो भी शब्द इस्तेमाल किए हों, उनका अर्थ बिल्कुल अलग था··· उनका अर्थ था: बस, यहीं तक, आगे मत जाओ! कहीं और लेकिन इस तरफ़ नहीं। मैं तुम्हारे साथ काफ़ी अशिष्टता से पेश आया था क्योंकि मैं तुम्हें जगाना चाहता था, बचाना चाहता था··· किससे? शतरंज से? नहीं, यूजिन, तुम इन पंक्तियों को कभी नहीं पढ़ोगे। हम अपने इन छोटे-मोटे झगड़ों को जल्दी ही भूल जायेंगे··· उन पर खामोशी का पर्दा गिरा देंगे। अगली बार जब तुम मेरे पास आओगे, तुम्हें पता भी न चलेगा कि तुम एक ऐसे विशेषज्ञ के पास बैठे हो जो एक अणु-वैज्ञानिक की तरह इस भय से आक्रांत है कि अपनी उदार भावनाओं से उत्प्रेरित होकर वह कहीं तुम्हें किसी जघन्य अपराध के रास्ते पर तो, नहीं ले जा रहा? शतरंज के विरुद्ध मैं तुम्हें किस तरह आगाह कर सकता हूँ? यदि तुम अपने

ढंग से ही मेरी ज़िन्दगी के रास्ते पर चलना चाहते हो तो क्या यह ज़रूरी है कि उस रास्ते की यातना और पीड़ा का भी सामना तुम्हें करना पड़े? मैं शतरंज के ऐसे अनेक खिलाड़ियों को जानता हूँ जो बहुत सुखी हैं। मैं तुम्हें सिर्फ़ अपने अनुभव, अपनी कहानी सुना सकता हूँ—उसका कौन-सा अंश तुम पर लागू होता है, इसका निर्णय तुम स्वयं कर सकते हो। उसका कौनसा अंश भविष्य में तुम पर लागू होगा, इसका निर्णय दुर्भाग्यवश, तुम फ़िल्हाल नहीं कर सकते।

पिछले वर्षों में मेरी असफलता! जानते हो, शतरंज के खिलाड़ियों ने अपने-अपने ढंग से उसके कारण खोजने की चेष्टा की है। कुछ का कहना है कि मैं सर्वोच्च बिन्दु पर पहुँच चुका हूँ—उसके आगे जाना मेरे बस की बात नहीं। यदि वे मेरे मित्र हुए तो युद्ध से पहले की मेरी सफल-ताओं की चर्चा करते हुए खेद प्रकट करते हैं कि अपने सर्वश्रेष्ठ वर्षों में—युद्ध के कारण—मुझे अन्तर्राष्ट्रीय खिलाड़ियों से खेलने का अवसर नहीं मिला। और अगर वे मेरे शत्रु हुए तो सारा दोष मेरे बौद्धिक अस-मंजस पर मढ़ते हैं। उनकी राय में मैं शतरंज खेलते हुए इतना डाँवा-डोल हो जाता हूँ कि समय का साथ नहीं दे पाता और पिछड़ जाता हूँ। मेरा अपना व्यवहार भी काफ़ी भेदपूर्ण है··· एक धुँधले ढंग से मैं सोचता हूँ कि मुझे जमकर शतरंज के बारे में लिखना चाहिए। वास्तव में मेरी भरसक कोशिश यही रहती है कि किसी टूर्नामेंट में मुझे भाग न लेना पड़े··· मैं उनसे कतराने की चेष्टा करता हूँ। शतरंज की बाज़ी के सामने··· और ईमानदारी की बात कहूँ तो अपनी किताब लिखते समय भी मैं अपने को एक बेड़ियों से बँधे कैदी की तरह महसूस करता हूँ, जिसे अपने काम के प्रति कोई आसक्ति नहीं, कोई उत्साह नहीं। अपने बारे में मेरा यह संशय और अनिश्चय इसलिए नहीं है कि मैं विरोधी को अपने से ज़्यादा ताक़तवर मानता हूँ, बल्कि इन चौंसठ खानों वाले शतरंज-बोर्ड के सामने बैठकर कभी-कभी यह विचार मुझे मथने लगता है कि क्या यही मेरी उचित और सही जगह है··· यह बोर्ड जो बरसों से मेरा घर, मेरी वर्क-शॉप, मेरा कर्मक्षेत्र और युद्ध-क्षेत्र रहा है? यह संशय अचानक ही उत्पन्न

नहीं हुआ। एक ज़माना था जब मैं शतरंज से सचमुच प्यार करता था—करता था—अतीत काल की यह क्रिया मेरे भीतर अजीब-सी उदासी भर देती है और लगता है कि अपने पुराने प्रेम को दफ़नाने का मुझे कोई अधिकार नहीं। इस खेल को मैंने ऐसी उम्र में सीखा था जब लड़के सिगरेट पीना, रंग-रंगीली शराबें पीना और अपनी प्रथम कविताएँ लिखना सीखते हैं। कितनी अजीब बात है कि किशोर उम्र के लड़के बड़ों की दुनिया में हमेशा 'पाप और दुराचार' के दरवाज़े से ही प्रवेश करते आए हैं। मैं सिगरेट पीता था, रंगीली शराबें पीता था, स्विमिंग-पूल के केबिनों के सुराखों से कपड़े बदलती हुई लड़कियों को देखा करता था। कविताएँ मैंने कभी नहीं लिखीं—सिर्फ़ शतरंज खेलता था, किन्तु बात एक ही थी। उन दिनों मुझे अपने सहपाठी कितने दयनीय, उथले और जंगली जान पड़ते थे! एक दिन खाली पीरियड में मैं और यार्का शतरंज खेल रहे थे··· दूसरे लड़के इर्द-गिर्द खड़े हमारे खेल में खलल डालने की चेष्टाएँ कर रहे थे और बीच-बीच में बेहूदा मज़ाक या फ़िकरे कस देते थे। उनमें से एक लड़के कावनिक को एक नया मज़ाक सूझा और उसने अपना जूता उतारकर शतरंज-बोर्ड पर दे मारा। आज भी मैं लड़कों के हँसी-ठहाके सुन सकता हूँ··· उन्हें खेल बिगाड़ने का यह तरीका बहुत पसन्द आया था। उस समय मैंने एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाला, लेकिन जिस निगाह से मैंने उन्हें देखा वह उन्हें खत्म करने के लिए काफ़ी थी। "कमीने कहीं के!" मैंने मन-ही-मन कहा और ज़मीन से बिखरी हुई मुहरें उठाने लगा "बदज़ात और कमीने!" मैं उन सबसे भिन्न था, उनसे कहीं अधिक बेहतर, भावप्रवण, चतुर और गरिमा-सम्पन्न। उनकी रूक्ष-शक्ति यह तथ्य पहचानती थी और इसीलिए वह मुझे नष्ट करना चाहती थी, क्योंकि वह किसी ऐसी चीज़ को बर्दाश्त नहीं कर सकती थी जो उसके परे हो, उसके ऊपर हो। यूजिन··· तुम्हें कभी ऐसा अनुभव हुआ है? अवश्य हुआ होगा··· तुम सत्रह वर्ष के हो चले। वे एक दुनिया में रहते थे, सिर्फ़ एक दुनिया में। उन्हें यह बात असहनीय लगती थी कि मेरी एक और दुनिया है··· रहस्यमय, अज्ञात··· एक ऐसी दुनिया, जिसमें मैं सर्वशक्तिमान था और जहाँ उनके जूते और घूंसे-मुक्केकोई मानी नहीं रखते थे। वह एक

निराली दुनिया थी··· किन्तु उसे मुझे हमेशा दूसरों के अपमान और लांछना से दूर अपने में बचाकर रखना पड़ता था। पिताजी मेरे शतरंज खेलने से उतना ही चिढ़ते थे जितना सिगरेट पीने से। (उन्हें रंग-बिरंगी शराबों और स्त्रियों के केबिनों के बारे में पता नहीं था।) "किसी दिन तेरी इस शतरंज को आग लगा दूँगा" गुस्से में चीखते हुए वह कहा करते थे, "आगे चलकर सिर्फ़ भाड़ झोंकेगा। कोई और अक्लमन्दी का काम ही नहीं रह गया है? अपने चाचा पेपीक की याद नहीं··· तेरी तरह उन्हें भी ताश की लत पड़ गयी थी और उनका जो हाल हुआ, वह तुझसे छिपा नहीं है।" मैं गुस्से में भन्ना उठता "चाचा ताश पीटते थे··· यह शतरंज है!" "फ़र्क क्या है··· दोनों ही चण्डूखाने की चीज़ें हैं।" आज मैं अपने-आपसे पूछता हूँ कि मेरे सफल केरियर के लम्बे, बहुत लम्बे वर्षों के दौरान पिताजी का यह एक वाक्य शायद बराबर मेरे रास्ते पर रोड़े की तरह अटक जाता रहा है··· हर जगह जहाँ भी मैं जाता हूँ। अन्तर्राष्ट्रीय होटलों के सजे-बने कमरों में टूर्नामेंट में भाग लेते हुए, खेल के अदम्य उत्साह तले··· खेल, जो हर प्रतियोगिता में मानव-स्वभाव की नयी परतें खोलता है जो एक कला है या उसके बहुत नज़दीक है और जो कला की ही तरह निर्मम, छली, उल्लासमय, शानदार और क्रूर हो सकता है। अपने प्रति मेरा वर्तमान असंतोष, अन्धी गली में फँस जाने की अनुभूति, ज़िन्दगी के प्रति थकान और अनिश्चय···ये सब चीज़ें भीतर ही-भीतर एक बीमारी की तरह धीरे-धीरे पलती रही थीं। बादेन-बादेन में सिर्फ़ पहली बार वह बीमारी ऊपर सतह पर उफन आयी थी।

तुम शायद जानना चाहते हो, वहाँ क्या हुआ था? नहीं, कोई सनसनीखेज़ दुर्घटना नहीं हुई। उस समय हम टूर्नामेंट की छठी बाज़ी खेल रहे थे। बाहर आँधी आने के आसार थे···दम घोंटता-सा वातावरण था। मेरे प्रतिस्पर्द्धी, युगोस्लाव खिलाड़ी स्तामबुक की बारी थी और वह काफ़ी देर से अपनी चाल के बारे में सोच रहा था। वह लम्बे कद का आदमी था और उसकी आँखें घोड़े की आँखों की तरह ग़मग़ीन थीं। उसके पीले, पसीने से लथपथ माथे को देखकर—जिसे उसने अपनी अंगुलियों से

पकड़ रखा था—मेरे भीतर अजीब-सी घुटन और बेचैनी फैलने लगी। उसने ऐश-ट्रे पर सुलगती हुई सिगरेट झुका रखी थी। मैं मंत्र-मुग्ध-सा एकटक सिगरेट के राख वाले सिरे को देख रहा था, एक अजीब, तनाव-भरी प्रतीक्षा में—कि वह राख अब गिरी, अब गिरी। आखिर उसकी सिगरेट की राख जली हुई तीलियों और सिगरेटों के टुकड़ों के बीच चुपचाप जा गिरी··· और तब उस क्षण न जाने क्यों मैं बुरी तरह झुँझला उठा। मैं वह बाज़ी लगभग जीत चुका था···आखिर वह इस बात को समझने में इन्कार क्यों कर रहा था? वह इतनी देर से सोच क्या रहा है? वह हार क्यों नहीं मान लेता? फिर मैं इस धुएँ-भरे कमरे से बाहर जा सकता हूँ··· गुसलखाने में शॉवर के नीचे नहा सकता हूँ, खिड़की खोलकर आँधी की प्रतीक्षा कर सकता हूँ। मैंने गुनगुना-सा सोडा पिया। मैं शॉवर के बारे में सोचने लगा—फव्वारे से छूटती हुई बूँदों की धार और तब सहसा होटल के गुसलखाने की जगह एक नया दृश्य सामने चला आया···एक चरागाह और वाटर-पाइप से निकलती, धूप में झिलमिलाती और घास में गड़गड़ाती हुई पानी की धार···शबनम में भीगी घास जिस पर मैं नंगे पाँवों से दौड़ रहा था। मैं एक बार फिर से छः वर्ष के लड़के में बदल गया था। माँ बाल्टी में पानी भरकर ला रही थी, "तौलियों पर भी पानी छिड़क देना!" उन्होंने मुझसे कहा। चारों तरफ़ धूपीले मैदान में कपड़े सूख रहे थे और पानी की बाल्टी से एक भीगा-सा इन्द्रधनुष मोर की पूँछ की तरह निकल आया था। हर चीज़ साफ़ और धुली हुई सी जान पड़ रही थी, हवा, साँसें, शहर के परे पहाड़। और तब सहसा सड़क के किनारे खड़े पेड़ों की छायाएँ लम्बी होने लगीं। हम घूरी को पीछे छोड़कर घर की ओर जा रहे थे। माँ की पीठ टोकरी के बोझ-तले झुकी थी और वह धूल में नंगे पाँव रखती हुई चुपचाप चल रही थी। और तब···इस शान्त और सामंजस्यपूर्ण दृश्य के बीच, टूर्नामेंट की घड़ी झनझना उठी, इस सबके बीच टूर्नामेंट की घड़ी की झनझनाहट। काश, मैं एक क्षण के लिए वापस लौट पाता···अतीत के उस एक क्षण के लिए मैं आधी ज़िन्दगी देने को तैयार था। मैंने अपनी चाल

एकदम चल दी। किन्तु जब स्टान बुक ने अपना माथा दोबारा उठाया और अँगुलियों से सिगरेट टटोलने लगा; तब सहसा मुझे दौरा पड़ गया। हाँ···एक क्षण के लिए मैं तुम्हें भरमाना चाहता था, क्योंकि 'दौरे' का नाम सुनते ही तुरन्त तुम्हारा ध्यान मेरे दिल की ओर गया होगा, किन्तु मेरे पास कोई दूसरा शब्द नहीं है, जिसके द्वारा मैं उस क्षण की आकस्मिकता और घनीभूत पीड़ा को व्यक्त कर सकूं।

मुझे लगा जैसे अनायास ही मैंने दूसरी, क्रूर, वस्तुपरक आँखें खोल दी हैं और उन आँखों से जो कुछ मुझे दिखायी दिया, उसने सहसा मुझे आतंकित-सा कर दिया। एक कमरे में दस छोटी-छोटी मेज़ें लम्बी कतार में लगी थीं। हर मेज़ के आमने-सामने दो प्रौढ व्यक्ति बैठे किसी ऐसे काम में व्यस्त थे जो मेरी समझ के बाहर था। हर जोड़े के बीच एक चौकोर आकार का कपड़ा था जो अनेक काले और सफेद खानों में बँटा था। इन खानों पर वे लोग पूर्व-निर्धारित नियमों के अनुसार काठ या हाथीदाँत के बने छोटे-छोटे खिलौने घसीट रहे थे। अधिकांश खिलौनों का रंग-रूप पहचानना असंभव था। इनमें से चार ऐसे थे जो किसी युद्ध-क्षेत्र के स्तम्भ जान पड़ते थे, दूसरे चार खिलौनों के सिर घोड़ों के थे। मेज़ों के सामने बैठे ये बीस प्रौढ व्यक्ति बड़ी मेहनत से काम कर रहे थे। इन सब लोगों की इतनी कुशाग्र-बुद्धि थी कि वे किसी विद्युत्-बाँध की दीवार चुटकियों में नाप सकते थे, किसी भी विज्ञान-शास्त्र की बारीकियाँ समझ सकते थे। इसके बावजूद ये लोग अपनी समूची शक्ति सिर्फ़ एक बेमानी लक्ष्य को प्राप्त करने में लगा रहे थे और वह लक्ष्य महज़ इतना था कि किसी तरह अपने प्रतिस्पर्द्धी के मुख्य पुतले को एक ऐसे खाने में, नियमों और संबंधों के किसी ऐसे अन्तर्क्षेत्र में फँसा सकें, जहाँ से वह आगे या पीछे न जा सके। उनकी समस्त चेष्टाओं का एकमात्र परिणाम सिर्फ़ इतना ही था···इससे अधिक और कुछ नहीं। उनके चारों ओर एक वास्तविक दुनिया फैली थी जिसमें करोड़ों लोग अपने दुःख-सुख, अपने प्यार और प्रतिहिंसाओं के साथ जी रहे थे···बुलडोज़र खींचते हुए लोग, सुइयाँ चलाते हुए, रोटी सेंकते हुए, पेड़ काटते हुए ऐसे लाखों लोग जो किसी-न-किसी अर्थसंगत और स्पष्ट रूप

से उद्देश्यपूर्ण कार्य में व्यस्त थे। किन्तु मेजों के आगे बैठे हुए ये बीस आदमी और उनके साथ मैं···चौंसठ खाने, पुतले, शह और मात। मुझे लगा जैसे मैं किसी दुःस्वप्न से जाग गया हूँ "आखिर मैं यहाँ किस तरह आ गया? मैं यहाँ क्या कर रहा हूँ?" मैं अपने से ही यह प्रश्न पूछ रहा था। और तब एक असहनीय झटके से मुझे अहसास हुआ कि मैं गुमराह हो गया हूँ, कि अब मैं ज़िन्दगी की बहती धारा से कभी नहीं जुड़ सकूँगा, कि मेरे और वास्तविक जीवन के बीच शतरंज के मुहरों की एक ऐसी बेहूदा दीवार खड़ी हो गयी है, जिसे मैं कभी नहीं लाँघ पाऊँगा। उस समय तक शतरंज के बारे में, मानव-समाज में उसके मूल्य और महत्त्व के बारे में मेरे मन में कभी कोई संशय उत्पन्न नहीं हुआ था। किन्तु बादेन-बादेन के उस टूर्नामेण्ट के बाद मैं उसे संदिग्ध दृष्टि से देखने लगा··· मैं स्वयं अपने सामने एक संदिग्ध व्यक्ति बन गया। मैं सोचने लगा कि आखिर यह 'खेल' क्या चीज़ है, बच्चे क्यों खेलते हैं और बुज़ुर्ग लोग क्यों खेलते हैं? आदमी जितने तर्क बटोर सकता है, उन सब तर्कों के सहारे मैं अपने अस्तित्व की सार्थकता खोजने लगा। मेरे मन में अब भी एक छिपी हुई आशा है कि मेरे सब संशय ग़लत और निराधार हैं··आदमी क्या इतनी आसानी से अपनी समूची ज़िन्दगी को ग़लत करार दे सकता है? कभी-कभी मुझे लगता है कि बादेन-बादेन टूर्नमिण्ट का वह दुःस्वप्न शायद मेरी बीमारी और कमज़ोर दिल का ही तो परिणाम नहीं था? फिर कुछ ऐसे दिन, ऐसे महीने भी आते हैं जब मैं कुछ शान्त, कुछ बेहतर महसूस करता हूँ। लेकिन फिर पुराना दौर शुरू हो जाता है—कभी धीमे, कभी तेज़ी से···और हालाँकि मैं अपने को समझाने की कोशिश करता हूँ कि मेरे संशय निर्मूल हैं, उनके नीचे एक उलझन और अशान्ति दबी रहती है··· कोई गलत चीज। कोई चीज़ मेरे भीतर ग़लत हो गयी है।

८

जुजा नहीं आयी। मैं अनमने भाव से प्लेटफ़ार्म पर घूमने लगा और इलेक्ट्रिक-इंजन को ट्रेन से जुड़ता हुआ देखता रहा। मैं गुस्से में उबल रहा था। अगर जुजा का इन्तजार न करना होता तो मैं आराम से अपने कम्पार्टमेण्ट में खिड़की के पास बैठ सकता था। लोग अभी से रेल के कॉरीडोर में खड़े हो गये थे। मुझे गुस्सा आ रहा था क्योंकि जुजा के कारण अब मुझे इन लोगों के बीच धक्के खाते हुए रास्ता बनाना होगा। संभव है, इस समय तक शायद मेरी सीट पर भी कोई घुस गया होगा। मुझे उस पर अपना सूटकेस रख देना चाहिए था, सूटकेस से कोई किताब निकालकर सीट पर रख देनी चाहिये थी। धारीदार कोट पहने एक सुर्ख बालों वाला स्थूलकाय आदमी लेमनेड के दो गिलास ले जा रहा था··· जल्दी में वह एक लड़की से जा टकराया जो प्लेटफ़ार्म पर खड़ी तय नहीं कर पा रही थी कि किस डिब्बे में घुसे। दोनों ने एक-दूसरे से क्षमा माँगी। सुर्ख बालों वाले आदमी को काफ़ी खुशी हुई कि वह इतनी

सुन्दर लड़की से टकरा गया था। लड़की प्लास्टिक का कोट, तंग काले रंग की जीन्स और नुकीले सेन्डिल पहने थी। दुबला, छरहरा शरीर··· छरहरा और छोटा। मैं आशा कर रहा था कि वह मेरे डिब्बे में आयेगी, किन्तु वह साथ वाले डिब्बे में जा घुसी। मैं झुंझला उठा··· मैं इसलिए भी झुंझला उठा कि ऐसे दिन भी मुझे ऐसी बातें आकर्षित कर सकती हैं।

ट्रेन छूटने से दो मिनट पहले जुजा आयी थी। 'आना' गलत शब्द है, वह भाग रही थी। ऊँची एड़ियों के सेन्डलों पर उसका लड़खड़ाते हुए भागना मुझे काफी असंगत और हास्यास्पद-सा प्रतीत हो रहा था। इतना ही नहीं··· वह अपने साथ सफेद टिशू के कागज़ में लिपटा फूलों का गुच्छा भी लायी थी।

"मेरी तरफ से इन्हें माँ के पास रख देना।" उसने संवेदनशील लहजे में कहा।

मुझे लगा जैसे कोई काठ मार गया हो।

उस दिन सुबह ही मैं फूलों की दुकान में गया था, किन्तु अन्तिम क्षण मैंने इरादा बदल दिया और तय किया कि मैं जाहोरी में ही माँ के लिए फूलों का गुच्छा खरीद लूंगा। यदि यहाँ से फूल ले जाता तो रेल के यात्री तुरन्त समझ जाते कि मैं किसी की शव-यात्रा में शामिल होने जा रहा हूँ और यह चीज मुझे बहुत नागवार गुज़रती। और अब! अब मुझे इन फूलों के गुच्छे को, जो मेरे नहीं हैं, लोगों की भीड़ में से ले जाना होगा। बार-बार कहना होगा··· प्लीज एक्सक्यूज़ मी। लोग सिर उठा-उठाकर कभी मेरी ओर देखते थे, कभी फूलों की ओर। घर पहुँचने पर मेरी बहन रोज़ कहेगी, "तुम फूल लाए हो! ज़रा दिखाओ तो!" मुझे झूठ बोलना पड़ेगा, बहाना बनाना होगा कि ये फूल मैं ही लाया हूँ क्योंकि जाहोरी में किसी को जुज़ा के अस्तित्व-मात्र का भी आभास नहीं है। अगर झूठ न बोलूं तो उनसे क्या कहूँगा? "मेरी एक दोस्त

ज़ुज़ा ने ये फूल दिये हैं।" और वे सोचेंगे, 'अजीब बात है··· एक ऐसी औरत के फूल प्राग से लाया है जिसे माँ ने देखा भी न था, जानना तो दूर रहा··· और खुद लाया है सोमार की दुकान से साधारण फूलों का गुच्छा···' अपने कम्पार्टमेण्ट की ओर जाते हुए मैं तेज़ी से सोचने की कोशिश कर रहा था कि मुझे क्या करना चाहिये। मैं घरवालों को ज़ुज़ा के बारे में कुछ भी नहीं बताना चाहता था··· उसके बारे में बताना कुछ वैसा ही होता जैसे यह स्वीकार करना कि मुझे शराब पीने की लत है। ज़ुज़ा और ज़ाहोरी के बीच कोई तुक नहीं बैठती थी··· इन फूलों के ज़रिये ज़ुज़ा एक ऐसे क्षेत्र में घुसने की अनधिकार चेष्टा कर रही थी, जिसका उससे दूर का नाता भी नहीं था। मैं उसे वहाँ नहीं आने दूंगा, उसे वहाँ आने का कोई हक नहीं··· मैं यह कभी बर्दाश्त नहीं कर सकूंगा कि उसके ये फूल माँ की अर्थी पर दिखायी दें। मुझे कम्पार्टमेण्ट के दरवाज़े पर खड़ा रहना चाहिये था। ट्रेन के चलते ही मैं लैवेट्री में जाकर खिड़की से इन फूलों को बाहर फेंक देता। लेकिन अब मैं वापस नहीं जा सकता था।

कम्पार्टमेण्ट की सब सीटें भर चुकी थीं। मेरी सीट पर प्लेटफार्म वाली वही लड़की बैठी थी जिसने काली जीन्स और नुकीले सेंडल पहन रखे थे। उसे देखकर मैं चौंक-सा गया और सोचने लगा कि कहीं मैं गलत कम्पार्टमेण्ट में तो नहीं चला आया हूँ। सीट के ऊपर देखा तो मुझे अपना सूटकेस दिखायी दिया—उसी जगह जहाँ मैंने रखा था। किन्तु अब उसके ऊपर दो अटेची-केस और एक नीला थैला पड़े थे··· नीले थैले पर बड़े-बड़े सफेद अक्षरों में लिखा था—AIR FRANCE। लड़की शायद मेरी झुंझलाहट भाँप गयी होगी। मुझे देखते ही वह उठ खड़ी हुई।

"माफ कीजिए··· मैं शायद आपकी सीट पर बैठी हूँ।"

"हाँ," मैंने कहा, "लेकिन बैठी रहिये। मैं खड़ा रहूँगा।"

"नहीं··· नहीं···" यह कैसे हो सकता है! लेकिन बैठने से पहले

मैंने पूछ लिया था कि यह सीट भरी हुई तो नहीं है।"

"कोई बात नहीं··· आराम से बैठी रहिए।"

वह शरमाती हुई दुबारा बैठ गयी। वह आधुनिक किस्म का कम्पार्टमेंट था जिसकी सीटों पर लाल चमड़े की गद्दियाँ लगी थीं। पसीने से चिपचिपे हाथों से मैंने ऊपरी सीट का एक कोना पकड़ लिया। रेल के झटकों से मेरा कंधा पीछे खड़े आदमी की पीठ से बार-बार टकरा जाता था। ओवरकोट उतारना संभव नहीं था··· कुछ ही देर में मेरा माथा पसीने से लथपथ हो उठा और उसकी बूंदें नीचे टपकने लगीं। जुज़ा के फूल मेरे लिए एक बोझ-सा बन गये थे। मैं उन्हें नीचे झुककर नहीं पकड़ सकता था, क्योंकि बीच में स्कीइंग की पैंट पहने एक लड़के की टाँगें फैली थीं··· न ही मैं उन्हें अपने घुटनों के सामने पकड़ सकता था क्योंकि उस तरफ एक लेफ्टीनेन्ट अखबार फैलाकर पढ़ रहा था। सिर्फ एक ही रास्ता बचा था कि मैं अपनी कुहनी उठाकर उन्हें पकड़े रहूँ···एक टेनिस के खिलाड़ी की तरह जो कुहनी उठाकर 'बैक हैंड' लेता है। मैंने हताश भाव से ऊपर की सीट की ओर देखा, जहाँ सामान-असबाब रखा था। काश! अगर किसी तरह से इन सूटकेसों को अलग ढंग से रखा जाता। यदि एक अटेची-केस को पीछे की तरफ सरका दिया जाता और दूसरे को बीच की खाली जगह में··· तो मैं ये फूल अपने सूटकेस के ऊपर टिका सकता था। यह तब्दीली आसानी से की जा सकती थी। किन्तु ऐसा करने से पहले यह पूछना लाज़मी था कि ये अटेची-केस किस भले आदमी के हैं। मैं जानता था कि यह सवाल पूछते ही कोई आदमी खड़ा होगा और तब इस शान्त, आरामदेह कम्पार्टमेंट में एक हलचल-सी मच जायेगी और यह खयाल मुझे अपनी घुटन और असुविधा से कहीं अधिक असहनीय जान पड़ा। काश! कोई आदमी खुद-ब-खुद मेरी तकलीफ़ समझकर यह कह देता, 'अरे भाई, ये फूल ऊपर क्यों नहीं रख देते?' लेकिन किसी ने कुछ नहीं कहा। ट्रेन बहुत तेज गति में भागी जा रही थी और धुंध से ढकी खिड़कियों के पीछे टिमटिमाती धुंधली रोशनियाँ दिखायी दे जाती थीं। मुझे मितली-सी आने लगी···लग रहा था जैसे कोई मेरी कुहनी में सुइयाँ

घोंप रहा हो। पता नहीं, मुझमें इतना साहस कैसे आ गया था, किन्तु सहसा मुझे अपनी ही आवाज़ सुनायी दी।

"मेहरबानी करके बता सकते हैं कि ये अटेची-केस किसके हैं?"

लापरवाह और अबूझी-सी आँखें मुझ पर उठीं··· मेरा चेहरा सुर्ख़ हो आया।

"क्या इन्हें थोड़ा-सा सरकाया नहीं जा सकता?" मैंने कहा।

एक भारी-भरकम सज्जन—जो काली जीन्स वाली लड़की के सामने बैठे थे—खड़े हुए और एक शब्द भी कहे बगैर उन्होंने वे अटेची-केस अपनी सीट के नीचे डाल दिये।

"नहीं···नहीं···मेरा मतलब यह नहीं था।" मैंने हड़बड़ाकर कहा, "यहाँ ऊपर काफ़ी जगह है।"

वह मुस्कराये, "नहीं जनाब, मुझे बेरीन उतरना है। उसके बाद आप मेरी सीट पर बैठ सकते हैं।"

चुटकी में सब काम हो गया। हमेशा की तरह··· अन्त में सब काम सहज और आसान हो जाता है।

पता नहीं, किसी अजनबी को सम्बोधित करते हुए मुझे क्यों इतनी तकलीफ़ महसूस होती है। मैं स्वयं अपनी इस विवशता का कारण नहीं जानता··· हमेशा मेरी कोशिश रहती है कि ओट में छिपा रहूँ, सामने आकर दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित न करूँ, दूसरों को परेशान न करूँ। यह कुछ ऐसे ही है जैसे पेड़ के भीतर रहकर कोई आदमी टहनी, फूल का रंगीन धब्बा या हरा पत्ता बनने का बहाना करे। मुझे आशा रहती है कि अगर मैं दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट न करूँ तो वे मुझे नज़रअन्दाज़ कर जायेंगे, किन्तु यदि वे ध्यान से देखेंगे तो मैं पकड़ लिया जाऊँगा।

ज़ाहिर है, मैं टहनियों के बीच टहनी नहीं हूँ··· सिर्फ़ होने का बहाना करता हूँ। एक आतंकित गिलहरी की तरह। जूडा देर से

स्टेशन आयी थी जिसके कारण मैंने अपना कोना खो दिया था जहाँ मैं दूसरों की निगाहों से बचकर चुपचाप अकेला बैठ सकता था। इस बात को लेकर मुझे उस पर जितना अधिक गुस्सा आया था उतना उन फूलों पर नहीं जो वह इतने निर्लज्ज ढंग से माँ के लिए लायी थी।

वैरोन आने पर मैं सीट पर बैठ गया। मैं अब काफी प्रसन्न था··· फूल सूटकेस पर रखे थे और मैंने अपना ओवरकोट उतारकर सीट की खूंटी पर लटका दिया था। रेल की गति धीमी पड़ गयी थी। कोने में बैठे लेफ्टीनेंट ने अपना अखबार मोड़कर एक तरफ रख दिया और बेशर्मी से काली जीन्स वाली लड़की को घूर रहा था। वह सचमुच सुन्दर थी—एक बिल्ली की तरह। उसकी छोटी, कुछ ऊपर उठी हुई नाक थी और 'एंजिल' जैसे उजले चमकीले बाल जिन्हें उसने शायद 'हेयर ड्रेसर' को टिप देकर टॉमब्बॉय के बालों की तरह बनवाया था। काली जीन्स वाली लड़की सिगरेट पी रही थी। नाक सिकोड़कर उसने अपनी सिगरेट ऐशट्रे में बुझा दी, जिसमें टॉफी के कागज और सेबों के छिलके भरे थे। फिर उसने अपने बैग से छोटा-सा फिलिप्स ट्रान्जिस्टर रेडियो निकाला और उसे धीमे स्वर में बजाने लगी। बहुत धीमे नहीं—उसका स्वर इतना ऊँचा अवश्य था कि आस-पास बैठे लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सके।

"कितना छोटा-सा है!" मेरे सामने बैठी एक महिला ने आश्चर्य से कहा, "जरा जोर से बजाइये न!"

आवाज निकालने वाला वह छोटा-सा यंत्र अब खिड़की से जुड़े टेबुल पर रखा था। येव मोन्तां गा रहा था—अपने खूबसूरत शहर पेरिस के बारे में। इस नन्हे-से चमत्कारपूर्ण खिलौने को देखकर सबके चेहरों पर प्रशंसा-भरी मुस्कराहट सिमट आयी थी। आस-पास बैठे सब लोग मुस्करा रहे थे—सिर्फ़ रेडियो की मालकिन बहुत गम्भीर होकर बैठी थी। स्थूलकाय महिला के प्रश्न का उत्तर देते हुए उसने बताया कि उसे यह

रेडियो विदेश से प्राप्त हुआ है और लेफटीनेंट से कहा कि इसकी वैटरी १४० घंटों तक चलती है। प्रश्नों का उत्तर देते समय वह सचमुच इतनी गम्भीर, तन्मय और विनयशील दीख रही थी मानो ट्रांजिस्टर रेडियो की ईजाद उसने स्वयं की हो। कुछ देर वाद जव लोगों का आकर्षण और उत्साह कुछ मन्द पड़ने लगा उसने ट्रान्जिस्टर को गँवारों के फायदे के लिए वैसे ही खुला छोड़ दिया और अपने वैग से 'डेली वर्कर' निकालकर अपनी आँखें उसके पिछले पन्ने पर गड़ा दीं। मुझे मज़ाक सूझा कि उससे अंग्रेज़ी में वात करूँ··· सारी शेखी हवा हो जाएगी। सिर्फ दो-चार शब्द आते होंगे··· लेकिन कम्पार्टमेण्ट के लोगों को यह अवश्य जतला देना चाहती है कि वह विदेशी अखवार पढ़ रही है। कम्यूनिस्ट अखवार 'डेली वर्कर'। सिर्फ मजवूरी थी···उसका वस चलता तो 'लाइफ' से कम वात न करती।

उन दिनों जव हम 'वोहेमियन जंगल' में छुट्टियाँ विता रहे थे, तो मार्था भी कुछ इसी तरह दिखावा करती थी। विवाह के वाद वे हमारी पहली गर्मियों की छुट्टियाँ थीं। मार्था हमेशा अपने साथ लेनिन की किताव 'एम्पायरो-क्रिटिसिज्म' रखती थी। खाना खत्म करते ही वह टेवुल से किताव उठा लेती थी और उसे इस तरह सामने रखती थी ताकि होटल के डाइनिंग-रूम में वैठे सव लोग किताव के कवर पर लेनिन का चित्र देख सकें। होटल के मेहमानों के सामने यह प्रदर्शन वहुत अनुचित न था··· सव-के-सव खूसट, धन्ना-सेठ थे। किन्तु फिर भी मार्था के व्यवहार पर मुझे काफी झुँझलाहट आती थी। मुझे मालूम था कि वह सिर्फ किताव के पन्ने पलट रही है और वास्तव में उसका ध्यान कहीं और भटक रहा है।

"अच्छा वताओ," एक दिन जंगल में जव वह लेनिन की किताव लेकर घूम रही थी, जिसे उसने एक वार भी नहीं देखा था, मैंने सहसा उससे पूछा, "यह प्रकृतिवाद क्या वला है? वर्कले, ह्यूम और अवेनारियस के वीच जो भेद है, वह मुझे समझ में नहीं आता। क्या तुम मुझे कुछ

इस बारे में बता सकती हो ?"

उसका चेहरा हल्के-से सुर्ख हो गया।

"यह ज़रा टेढ़ी चीज़ है।" उसने अनिश्चित स्वर में कहा।

"मैं किसी और समय तुम्हें समझाऊँगी। इस वक्त मेरा लेक्चर देने का मूड नहीं है।"

मैं सीट के सिरहाने बैठ गया और ओवरकोट के पीछे सिर छिपाकर सोने की चेष्टा करने लगा। यदि मैंने मार्था को तलाक़ न दिया होता, तो वह इस समय मेरे साथ बैठी होती। ज़ाहोरी जाना उसे हमेशा बोझ-सा प्रतीत होता था और इस समय भी शायद वह खीजी हुई बैठी होती। उसे माँ ज़्यादा पसन्द नहीं आयी थीं। माँ को मार्था ज़्यादा पसन्द नहीं आयी थी। "तुम भी न जाने किस महारानी को पकड़ लाये!" वह कहा करती थीं। "हर बात पर वह नाक-भौं सिकोड़ती रहती है। उसकी आँखों में मैं सिर्फ एक खूसट बुढ़िया हूँ।" मोन्तां का गाना खत्म हो चुका था और अब उस फिलिप्स ट्रांज़िस्टर से फ्रेंच में खबरें सुनायी जा रही थीं। अपने कोट के पीछे से मैं सुन सकता था कि काली जीन्स वाली लड़की किसी और स्टेशन को टटोल रही है। फिर सहसा एक छोटी 'टिक' के साथ रेडियो चुप हो गया। एक लम्बे अर्से से मैंने मार्था के बारे में नहीं सोचा था। मैं उसका चेहरा याद करने की कोशिश करने लगा, किन्तु जो कुछ मैंने देखा वह मार्था का चेहरा नहीं था, बल्कि एक किस्म का शार्ट-हैंड चिह्न था, जो समूची मार्था को अभिव्यक्त कर देता था। मैं उसके नाक-नक्श—ठोड़ी, दाँत, नाक अलग से स्मरण नहीं कर पाता था। सिर्फ याद रह गयी थीं उसकी आँखें··· बैंगनी रंग की आँखें, रोशनी में चमकती हुईं··· और उसके पतले हाथ··· और वह कॉफ़ी रंग की ऊनी पोशाक। "तुम्हें यह पोशाक कहाँ से मिली ?" मैंने एक बार पूछा था, "तुम पर सचमुच बहुत फबती है।" "कॉन्सनट्रेशन-कैम्प से," उसने कहा, "जब रूसी सेनाओं ने हमें मुक्त किया तो हमने सारे गोदाम खाली कर डाले। हमें जो सबसे खूबसूरत चीज़ें मिलीं, उन्हें

हंगरी की यहूदी औरतें पीछे छोड़ गयीं थीं।'' जनवरी, उन्नीस सौ सैंतालीस में मार्था ने एक ट्रेड-यूनियन दैनिक में काम करना शुरू किया था। उस अखबार के लिए मैं उन दिनों स्पोर्ट्स फ़ीचर लिखा करता था। उन दिनों के कॉन्सनट्रेशन-कैम्प से वापस आये लोग मुझे अद्वितीय, असाधारण प्राणी जान पड़ते थे। मार्था के हाथों को देखकर मैं अभिभूत-सा हो जाता था। सर्दी के दिनों में उसकी अँगुलियों को देखकर लगता था मानो उनका रक्त-स्पन्दन सहसा बन्द हो गया है··· अँगुलियों के जोड़ सफेद कागज़ की तरह सफेद हो जाते थे। मैं उसके हाथों को अपनी हथेलियों में भर लेता था और उस समय तक ज़ोर-ज़ोर से फूँक मारता रहता जब तक वे दुबारा गरम न हो जाते थे। उन क्षणों में मेरा दिल उस दुबली-पतली लड़की के प्रति, जिसने इतने कष्ट भोगे थे, प्रशंसा से भर उठता। हम चार वर्ष तक साथ रहे थे। मार्था में पत्रकार बनने की विशेष योग्यता नहीं थी, लेकिन उसने ज़िद पकड़ ली थी कि वह पत्रकार बनकर रहेगी। शुरू-शुरू में वे उसके लेख बिना कोई हेर-फेर किये छाप देते थे। बाद में सम्पादक उनमें काँट-छाँट करने लगा। आखिर एक दिन उसने मार्था को अपने कमरे में बुलाया और लम्बी बातचीत के बाद सुझाव दिया कि अगर वह लिखने के बजाय संपादकीय-मंडल के सचिव की हैसियत से काम करे, तो बेहतर होगा। मार्था रोने लगी और उसी क्षण उसने अखबार छोड़ने का नोटिस दे दिया।

''मैं भी देखूँगी, ये लोग मेरे साथ ऐसा सलूक किस तरह कर सकते हैं।'' उसने चीखते हुए मेरे सामने कहा, ''मैं सेन्ट्रल कमेटी में जाकर पता चलाऊँगी।''

''लेकिन सुनो··· अखबार का सम्पादक भी तुम्हारी तरह कम्युनिस्ट है···'' मैंने प्रतिवाद किया, किन्तु उसने हाथ हिलाकर मेरी बात रद्द कर दी, ''तुम राजनीति में नौसिखिया हो।'' उसने कहा और मैं चुपचाप उसकी ओर ताकता रहा। वह उसके लिए कठोर यातना की घड़ी थी। उसने अपने भीतर जो आदर्श··· या आदर्शों का मोह पाल रखा था, वह

धीरे-धीरे भंग होने लगा। कैम्प में उसने स्वतन्त्रता की जो तस्वीर अपने लिए बनायी थी, वास्तविक जीवन का यथार्थ उससे बहुत अलग था। उसका वज़न तेज़ी से घटने लगा। स्वभाव चिड़चिड़ा-सा हो गया। वह दिन-रात पार्टी के काम में जुटी रहती, किन्तु उसके अनुशासन में मुझे एक कड़वा-सा आत्म-प्रदर्शन दिखाई देता मानो लोगों को सुना-सुनाकर कह रही हो, 'साथियो··· ज़रा मेरी ओर देखिये··· उन्होंने मुझे महत्त्वपूर्ण मोर्चे से हटाकर छोटे-मोटे कामों में डाल दिया है, लेकिन मैं कॉन्सन्ट्रेशन कैम्प की कम्युनिस्ट हूँ··· मैं काम करती रहूँगी··· मैं आखिरी साँस तक काम करती रहूँगी।'

उन दिनों हमारे घर का वातावरण खिंचा-खिंचा रहने लगा। मार्था ने 'तेस्ला इलेक्ट्रिक-वर्क्स' में नौकरी ढूँढ ली। थकान से चूर होकर वह घर लौटती थी और आते ही सोफ़ा पर पड़ जाती थी। मेरा हर काम उसे खलता था, हर बात खटकती थी। मुझे लगता जैसे हर समय उसकी तनी हुई आँखें मेरा पीछा कर रही हैं, मुझे कोस रही हैं कि एक क्लान्त, थके हुए मज़दूर के प्रति मेरे मन में आदर और श्रद्धा की भावना नहीं है। उसका मज़दूर बनने का फ़ैसला भी मुझे खोखला आडम्बर जान पड़ता था—उन लोगों से बदला लेने का मूर्खतापूर्ण और कुत्सित तरीका—जिन्होंने उसकी युद्धकालीन सेवाओं को नज़रअन्दाज़ करके उसे प्रतिभासम्पन्न पत्रकार नहीं बनने दिया। उसके जीवन की गाँठ कुछ इतनी सख़्त पड़ गयी थी कि अब उसे खोलना संभव नहीं जान पड़ता था। पियानो की मरम्मत करने वाले आदमी की तरह मैं उसके व्यवहार के हर ग़लत 'सुर' को पहचान सकता था। उसके साथ रहना मेरे लिए यातना-सा बन गया। लगता था जैसे हमारे घर में एक बिगड़ा हुआ पियानो हमेशा मौजूद रहेगा। हर शाम मेरे मन में भय-सा बैठ जाता। काम शुरू करने से पहले ही मेरी तबियत में एक तनाव, एक झुँझलाहट-सी भर जाती मानो मुझे पहले से ही मालूम हो कि अब क्या होने वाला है।

तरह उसकी आवाज़ सुनायी देती थी, "ज़रा एक सिगरेट तो देना।" सिगरेट के बाद पानी का गिलास, पानी के बाद मुन्ज़र-दम्पती को टेलीफोन करने की प्रार्थना सिर्फ यह पूछने के लिए कि उन्होंने हमारे लिए थियेटर के टिकट खरीदे हैं या नहीं और उसके बाद कुछ और। इन छोटे-छोटे कामों को मेरे सामने रखकर वह मुझ पर हमला करती थी मानो वह मेरे उस जहाज़ को डुबोना चाहती हो, जो उन दिनों सफलता के सागर पर बह रहा था।

"क्या मेरे लिए एक कप कॉफ़ी बना सकते हो?" उसकी आवाज़ आखिर मेरी सहन-शक्ति की अन्तिम सीमा को तोड़ देती। मैं गुस्से में शतरंज-बोर्ड ज़मीन पर पटक देता और चिल्लाने लगता, "क्या तुम खुद नहीं बना सकतीं? तुम क्या एक मिनट भी मुझे शान्ति से काम नहीं करने दोगी? यह मेरा कसूर नहीं है कि मैं शतरंज खेल सकता हूँ··· और तुम लिख नहीं सकतीं।" उसके आँसू फूट पड़ते··· मुझे लगता मैं जानवर हूँ। मैं उससे माफी माँगता, उसके बालों को सहलाने लगता और मुझे अपने गुस्से पर ही गुस्सा आता। किन्तु कहीं अपनी आत्मा के बहुत भीतर मुझे अजीब-सी कड़वाहट महसूस होती··· सिर्फ एक इच्छा होती कि घर का वातावरण किसी तरह शान्त हो सके। हमारा हर झगड़ा आलिंगन में समाप्त हो जाता। हम प्रेम करते—बड़े भूखे और कातर ढंग से। लेकिन प्रेम करते हुए हम चुप रहते···वे आसान और स्नेहसिक्त शब्द जो हर वास्तविक प्रेम के दौरान खुद-ब-खुद उफन आते हैं, हमारे बीच नहीं आते थे। कभी-कभी रात को मैं उसे चुपचाप देखा करता था, जब वह गहरी नींद में सो रही होती··· और तब मेरा मन गहरी करुणा से छलछला उठता। लगता वह बहुत असहाय है··· आखिर इतनी कम उम्र में इतनी यातनाएँ भोगने के बाद हर आदमी जर्जरित-सा महसूस करता है और मैं हूँ जो उसके साथ वहशी की तरह पेश आता हूँ। उसमें मुझे थोथी महत्त्वाकांक्षा और दर्प के अलावा कुछ और दिखायी नहीं देता··· मैं धीरे से अपना हाथ कम्बल के नीचे सरका देता ताकि उसे छू सकूँ। वह सहसा हड़बड़ा उठती मानो किसी ने उसे काट खाया हो, "क्या बात है? मैं सोने

ही वाली थी…"। "कुछ नहीं…" मैं खेद-भरे स्वर में कहता और तब मुझे लगता कि हम दोनों के बीच कोई उम्मीद बाकी नहीं रह गयी है।

ओवरकोट के पीछे साँस लेना दूभर जान पड़ रहा था। मैं शायद ऊँघने लगा था। दरवाज़े के नीचे से आती ठण्डी हवा ने मुझे जगा दिया। पीसक स्टेशन के बाद हमारी एक्सप्रेस-ट्रेन पैसेन्जर बन गयी थी और बहुत धीमी गति से चल रही थी। बार-बार हर स्टेशन पर रुकने के कारण कम्पार्टमेंट की गरमायी उड़ गयी थी। मैं शायद काफी देर तक सोता रहा हूँगा। लेफ्टीनेंट और काली जीन्स वाली लड़की जा चुके थे… वे कब उतर गये, मुझे पता भी न चल सका।

स्थूलकाय महिला, जिसे ट्रांज़िस्टर बहुत पसन्द आया था, भी उतरने की तैयारी कर रही थी। उसने मेरी ओर मुड़कर 'गुड नाइट' कहा और अपना कोट और स्कार्फ पहनने लगी। स्टेशन आने पर मैं कम्पार्टमेण्ट में बिलकुल अकेला रह गया। मुझे हल्की-सी खुशी हुई… यह सोचकर संतोष मिला कि मैं ज़ाहोरी में उतर जाऊँगा और ज़ुज़ा के फूल टर्मिनस तक यात्रा करते रहेंगे।

खिड़की के शीशे पर कुहरा जम गया था… मैंने कोट की आस्तीन से उसे सफा किया। अपर तमान का स्टेशन था। आधा घण्टे का सफर और था। बीच में सिर्फ तीन स्टेशन और आयेंगे… हराद्की, किज़ानोव, स्लेपीम्लिन—और फिर मैं अपने स्टेशन पर उतर जाऊँगा। बाहर की ठंडी हवा में साँस लेते हुए हमेशा की तरह मुझे खयाल आयेगा…अर्सा पहले जब तुम यहाँ रहते थे तो हमेशा यहाँ आने वाले गर्मियों के टूरिस्टों का मज़ाक उड़ाते थे, उनकी नकल करते थे। लेकिन अब खुद तुम्हारा इस जगह से कोई वास्ता नहीं… अब पहले जैसी हवा भी नहीं। लेकिन अपने शहर में चलते हुए सौभाग्यवश यह खयाल ज्यादा देर तक नहीं टिका रहेगा। स्टेशन से उतरते ही मेरे पाँव लीपा के पेड़ों से ढकी पगडण्डी पर मुड़ जायेंगे, पीछे पहाड़ों की तरफ जाती हुई रेल की सीटी सुनाई देगी और मैं धीरे-धीरे मध्यकालीन ज़ाहोरी की ऊँची-नीची, धुँधली रोशनी में चमकती हुई

गलियों पर चलता रहूँगा। रात के समय मुझे ये गलियाँ हमेशा किसी थियेटर के सेट की तरह दिखायी देती हैं। शहर का स्क्वॉयर भी उस समय उजाड़ पड़ा होगा···· इतना उजाड़ और सूना कि मैं न्याय की मूर्ति के सामने वाले फुहारे की बूंदों की टप-टप सुन सकूँगा। इस मूर्ति के अन्धे चेहरे पर शहर के कबूतर और चिड़ियाँ बसेरा करते हैं। दूध की दुकान के आगे मैं सीटी बजाऊँगा, जिन्हें घरवाले अर्सा पहले से पहचानते हैं। एक बार, दो बार। फिर उस कमरे की खिड़की खुलेगी, जो मेरे लिए दुनिया का सबसे मोहक, सबसे आरामदेह कमरा है। खिड़की पर माँ की जानी-पहचानी छाया देखने से पहले मुझे घर की दोनों बिल्लियों की पूँछें दिखायी देंगी। माँ की छाया के आगे····

"नीचे भागो !" माँ हल्के से बिल्लियों को डाटेंगी, "कोई आया नहीं और तुम दोनों सबसे आगे ! चलो भागो।"

बिल्लियों की छायाएँ अँधेरे में गायब हो जायेंगी, खिड़की का परदा ऊपर उठेगा और माँ की उल्लास-भरी आवाज सुनाई देगी—

"बस भाई, सीटी बन्द करो ! तुम आ गए !"

चाबी—जिसे पिछली शाम माँ ने कागज में लपेटकर रखा था—घंटी की तरह छप से सड़क पर आ गिरेगी, कागज हवा में ही अलग होकर दूसरी तरफ उड़ता जाएगा और मैं गेट खोलूँगा··· हमेशा ऐसे ही होता था। मेरी आँखें अनायास नम हो आयीं··· अब ऐसे कभी नहीं होगा।

क्रिजानोव स्टेशन पर जॉर्ज तारावा अपनी भारी-भरकम पत्नी के साथ कम्पार्टमेंट में आए। वह अपने साथ एक खरगोश लाए थे जिसका सिर खून से लिथड़े चीथड़े में बँधा था। एक लम्बे अर्से से जॉर्ज मुझसे बात नहीं करता, यह दिखाने का उपक्रम करता है, मानो मुझे जानता ही न हो। शायद शर्म की वजह से··· लेकिन चूँकि उम्र में मैं उससे बड़ा हूँ, मुझे उसका व्यवहार काफी अखरता है। गधा कहीं का··समझता है मैं पहले उससे 'हलो' कहूँगा। इस बार भी उसने मुझे देखा और आँखें

फेर लीं। मुझे खुशी हुई। बात शुरू करते ही वह मेरे प्रति सांत्वना प्रकट करने लगता जो मेरे लिए असह्य हो जाता।

हमारे पैरों के नीचे स्लेपी म्लिन का लोहे का पुल खड़खड़ाता हुआ गुज़र रहा था। अस्पताल के ऊपर मकानों की झिलमिलाती रोशनियाँ दिखाई देने लगी थीं। मैंने अपना सूटकेस उठाया और दरवाज़े के सामने आकर खड़ा हो गया। मैंने धीरज की साँस ली· · ·ऊपर की सीट पर फूल ज्यों-के-त्यों पड़े थे।

बाहर पहाड़ों की तरफ से बारिश-भरी तेज़ हवा चल रही थी, जिससे पता चलता था कि बर्फ पिघलना शुरू हो गयी है। मैं झिझकता हुआ रेल के डिब्बों के सामने से गुज़रने लगा, मानो मैं किसी महत्त्वपूर्ण घटना में भाग लेने जा रहा हूँ। प्लेटफ़ार्म पर भागते हुए मुसाफिरों की छायाओं को देखता हुआ मैं सोचने लगा कि शायद कोई मेरे लिए स्टेशन आया हो। मुझे उस रात प्लेटफ़ार्म पर हर चीज़ बड़ी अवास्तविक और धुँधली-सी दिखाई पड़ रही थी। तारों पर झूलती हुई लालटेनें अँधेरे और प्रकाश की सीमाओं को काटती जान पड़ती थीं· · ·और तब सहसा मुझे एलबर्ट दिखाई दिया। वह बजरी की सड़क पार करता हुआ मेरी तरफ़ आ रहा था। उसने कानों तक भेड़ की खाल की टोपी चढ़ा रखी थी और तंग कन्धों वाला काला ओवरकोट पहन रखा था जिस पर हमेशा रूई या धूल के निशान पड़े रहते थे। उसने मुझे बाँहों में भर लिया और मेरा मुँह चूमा, जो वह अक्सर नहीं करता।

"ओह, मिरेक!" वह मेरे कंधे पर झुका सिसक रहा था, "तुम्हारी माँ अब नहीं रही।"

अक्षरशः वही शब्द जो उसने कल रात टेलीफोन पर कहे थे। ओवर-कोट के नीचे उसकी दुबली-पतली पीठ की हड्डियाँ मेरे कंधों से रगड़ रही थीं। मेरा गला रुँध गया। एक बार फिर मुझे अपने दुर्भाग्य का अहसास हुआ—एक ऐसे दुर्भाग्य का, जिसने हम दोनों भाइयों को अपने शिकंजे में पकड़ लिया था। मुझे सब पर अफ़सोस हो रहा था—माँ पर, एलबर्ट पर,

रोजी पर···लग रहा था, हम सवको भी मर जाना चाहिए, जितनी जल्दी हो सके, उतनी जल्दी। किन्तु साथ-साथ यह अनुभव भी हो रहा था कि जिस तरह हम दोनों भाइयों ने एक-दूसरे को बाँहों में भींच रखा है, वह अपने में एक वहुत जवरदस्त, वहुत गौरवपूर्ण चीज़ है। यदि किसी दिन यह आणविक दुनिया विध्वंस होगी, तो अन्तिम दो प्राणी कुछ इसी तरह से एक-दूसरे को पकड़कर खड़े रहेंगे।

"चलो, घर चलें!" एलवर्ट ने अपने को वटोरकर कहा। वह अव सीधा खड़ा होकर आँखें पोंछ रहा था। वह मुझसे कुछ इस तरह पेश आ रहा था मानो माँ की मृत्यु से सवसे वड़ा धक्का मुझे ही लगा है। 'हमारी माँ नहीं रही' कहने के वजाय उसने कहा था, 'तुम्हारी माँ नहीं रही।' यह आज की वात नहीं, उसका वर्ताव मेरे साथ हमेशा से ही कुछ ऐसा रहा है। सिर्फ मेरे साथ ही नहीं। वह हमेशा सोचता है कि स्वयं सव-कुछ झेलकर वह परिवार के दूसरे लोगों की मदद कर सकता है।

"मि० विलचका," पीछे से आवाज़ सुनाई दी।

हम दोनों ने ही पीछे मुड़कर देखा···कोई मुझे वुला रहा था। कुछ ही दूर पर जॉर्ज तारावा खड़े थे। एक हाथ से उन्होंने खरगोश की टाँगों को पकड़ रखा था और दूसरे हाथ में जूज़ा के फूल उठा रखे थे।

"आप ट्रेन में यह भूल गये!"

श्रीमती तारावा ने अपनी सहानुभूति प्रकट की और जार्ज ने चुपचाप धीरे से मेरा हाथ दवाया। मैं एक शब्द भी नहीं वोल सका। मैं उस वच्चे की तरह महसूस कर रहा था जिसे शैतानी करते हुए रंगे हाथों पकड़ लिया गया हो।

१

उम्र में एलबर्ट हममें सबसे बड़ा है। मेरे और रोजी के नाक-नक्श माँ पर गए हैं—उन्हीं की तरह पीला चेहरा, भूरे बाल और आँखें और लम्बी मुड़ी हुई नाक। लेकिन एलबर्ट पिता पर गया है—उन्हीं की तरह उसके उजले बाल और नीली आँखें हैं और स्वभाव से भी काफ़ी खुशमिज़ाज है।

वह असाधारण रूप से दुबला-पतला है। जब वह बैठता है, लगता है मानो कुर्सी के नीचे उसकी टाँगों के बजाय खाली पतलून लटक रही है। अभी तक वह लगभग दस बार निमोनिया और प्लूरेसी का शिकार हो चुका है, पहली बार जब वह तीन वर्ष का बच्चा था और अन्तिम बार पिछले वर्ष वसन्त में। बचपन से ही खाँसी का दौरा आता है। "और कुछ नहीं, साला दमा है।" वह उसका अपना अनुमान है क्योंकि डॉक्टर के पास न जाने की उसने कसम खा रखी है।

एक बार जब वह तीसरी जमात में था उसने खेत में बहते नाले का पानी पी लिया था जिसके कारण लम्बे अर्से तक बीमार रहा। ऊपर के लगभग सब दाँत झर गये। शुमावा राष्ट्रीय-संघ की दयानतदार महिलाओं को इस बात पर काफ़ी दुख हुआ कि इतना तेज़ बालक दाँतों से वंचित रह जाये और उन्होंने संघ के कोष से एलबर्ट के लिए नकली दाँत बनवा दिये। उसके बाद तो उन महिलाओं की यह आदत बन गयी कि जब कभी सड़क पर एलबर्ट मिलता, उसे रोक लेतीं, मुँह खोलने के लिए आग्रह करतीं ताकि डॉक्टर के काम की प्रशंसा कर सकें।

"कैसा काटते हैं?" एक बार बैंक के डायरेक्टर की पत्नी श्रीमती श्रीमा ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा।

एलबर्ट गुस्से से भड़क उठा। उस रोज़ सात बार महिलाएँ उसे रोककर मुँह खुलवा चुकी थीं। उसने दूसरी तरफ़ देखा···उसके सहपाठी बत्तीसी निकाले हँस रहे थे।

"बहुत बढ़िया काटते हैं," उसने उत्तर दिया, "आप ज़रा अपनी नाक कटवाकर नहीं देखना चाहतीं?"

एलबर्ट की इस गुस्ताखी पर पिताजी ने उसे बेंत से पीटा था। डॉ० श्रीमा पिताजी के नियमित-ग्राहकों में से थे और हर वर्ष हमारी दूकान से दो सूट सिलवाते थे। बचपन के वर्षों में एलबर्ट को यह बात काफ़ी अखरती थी कि वह ज़्यादा तन्दुरुस्त और ताकतवर नहीं है। वह फुटबाल खेलना चाहता था और उसकी सबसे बड़ी अभिलाषा यह थी कि ग्यारह सेकेण्डों में सौ मीटर दौड़ सके। कई बार मैंने चोरी-चुपके उसे अपनी बाँहों के पुट्ठों को फुलाते देखा था। मुझे याद है एक बार मुझे उसकी एक किताब में यह विज्ञापन मिला था, "क्या आप अपने पुट्ठों को लोहे की तरह मज़बूत बनाना चाहते हैं?" इस विज्ञापन पर एक चौड़े, चमकते पुट्ठेदार महामानव की तस्वीर थी, जिसका सिर इतना छोटा था कि देखने में वह महामूर्ख जान पड़ता था।

अभी कुछ दिनों पहले तक मैं सोचा करता था कि एलबर्ट अपनी

ज़िन्दगी बिगाड़ बैठा है। यों भी जाहोरी में सब लोगों का यह मत था कि क्लिचका-परिवार में मैं ही सफलता की ऊँची सीढ़ी पर पहुँच सका हूँ। मैंने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है, अखबारों में मेरे बारे में लेख छपते हैं, मेरी किताबें अक्सर दुकानों में दिखाई देती हैं। 'सफल' मैं अवश्य हुआ हूँ—लेकिन सच पूछा जाये तो एलबर्ट का मस्तिष्क मुझसे कहीं ज्यादा बेहतर है। मैं हमेशा से उसकी कुशाग्र-बुद्धि की प्रशंसा करता रहा हूँ। वह हर काम बड़ी सहजता से कर लेता है··· उसे देख-कर मुझे बढ़िया मॉडल की मोटर याद आ जाती है जो ऊँची चढ़ाई पर भी बिना किसी मेहनत के फुर्र-फुर्र दौड़ती जाती है। मुझे पक्का विश्वास है कि वह आसानी से किसी कारखाने का डायरेक्टर, या वैज्ञानिक या किसी कठिन इलाके में पार्टी का सफल संगठनकर्त्ता बन सकता था। मुझे इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि यदि वह शतरंज सीखता, तो उसमें भी बहुत आगे जा सकता था। बरसों से वह रेवेन्यू के दफ़्तर में क्लर्की करता रहा और अब वह इस छोटे-से कस्बे जाहोरी की, जिसमें मुश्किल से पाँच हज़ार लोग रहते हैं—स्थानीय राष्ट्र-परिषद का सेक्रेटरी है।

कहना मुश्किल है, वह कोई ऊँची पदवी क्यों नहीं हासिल कर सका। शायद इसका कारण निमोनिया हो क्योंकि जब वह कॉलेज के दूसरे वर्ष में था तो दोबारा इस बीमारी ने उस पर आक्रमण किया था—और तब एकाएक उसका आत्मविश्वास डिग गया। उसके मन में यह बात बैठ गयी कि उसका स्वास्थ्य इस लायक नहीं कि वह नौकरी के साथ-साथ अपनी पढ़ाई जारी रख सके। शायद व्लास्ता के साथ उसका विवाह भी एक कारण रहा हो। किन्तु जब मैं इस विषय पर ज़्यादा गहराई से सोचता हूँ तो मुझे लगता है कि एलबर्ट को खुद ही कभी 'आगे बढ़ने' में विशेष दिलचस्पी नहीं रही। यह सही है कि रेवेन्यू-दफ़्तर में क्लर्की करना उसे बिल्कुल नहीं भाता था, किन्तु दूसरी तरफ़ किसी निश्चित क्षेत्र में काम करने की अभिलाषा या महत्त्वाकांक्षा उसमें रही हो, मुझे इसमें सन्देह है। इसके अलावा वह इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकता था कि जाहोरी के बाहर किसी दूसरे शहर में वह रह

सकता है। किन्तु कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि क्या आदमी के लिये यह निहायत ज़रूरी है कि वह सफल बने, आगे आये ? जब हम यह कहते हैं कि अमुक आदमी ने अपनी "जिन्दगी बिगाड़ दी," तो आखिर इसके क्या मानी हैं ? किसने अपनी जिन्दगी बिगाड़ी··· मैंने, जो आगे बढ़ने में सफल हुआ या एलबर्ट ने, जो नहीं बढ़ सका और जिसे शायद आगे बढ़ने में खास दिलचस्पी भी नहीं थी ?

जब कभी वह मुझे अपने शहर के लोगों के बारे में किस्से सुनाता है या जब मैं उसके मुँह से पहाड़ी-गाँवों के बारे में कहानियाँ सुनता हूँ, जहाँ वह पार्टी-संगठनकर्ता की हैसियत से अक्सर दौरे पर जाता है, तो मुझे काफी अजीब-सा महसूस होता है। मुझे लगता है मानो मैं कोई देश-निष्कासित प्रवासी हूँ और उस सुदूर-देश के बारे में कोई खत पढ़ रहा हूँ जिसे मुद्दत पहले मैं छोड़ चुका हूँ। युद्ध के बाद, मई १९४५ में हम दोनों एक साथ ज़ाहोरी आये थे। वे तीन महीने मुझे हमेशा याद रहेंगे जो हमने आखिरी बार ज़ाहोरी में एक साथ बिताये थे। आज भी उन दिनों के बारे में सोचते हुए मुझे गहरा सन्तोष और गर्व महसूस होता है। काम की कमी नहीं थी और हम दोनों दिन-रात जुटे रहते थे। फिर बाद में एलबर्ट वहीं टिका रहा और मुझे शतरंज ने बाहर बुला लिया। उसके बाद जब कभी ज़ाहोरी आना हुआ तो सिर्फ़ एक मेहमान की तरह··· क्या हर जगह मैं अपने को एक मेहमान की तरह महसूस नहीं करता ? अक्सर मुझे जिन्दगी एक बड़ी फैक्टरी-सी जान पड़ती है, जहाँ कभी मैं काम करता था। जिस मशीन पर मैं काम करता था, अब वहाँ कोई अजनबी आ गया है। मैं भी वहाँ कभी-कभी चक्कर लगा आता हूँ—दर्शकों की उस हास्यास्पद टोली के एक सदस्य की तरह जो पिकनिक के दिन फैक्टरियों को देखने आते हैं। मैं अब सब-कुछ भूल चुका हूँ और काम के बारे में कुछ भी नहीं समझता···मुझमें और दूसरों में—जो यहाँ रह गये हैं—कोई समानता नहीं। लेकिन एलबर्ट है जो आज भी अपनी मशीन के आगे डटा है और हमारी बहिन रोज़ा, छुट्टी की घन्टी बजते ही उसके लिये नाश्ते की पोटली लेकर आती है।

अगर एलबर्ट इन पंक्तियों को पढ़े, तो न जाने क्या सोचेगा? हमारे परिवार के सदस्य अपनी व्यक्तिगत चीजों के बारे में अक्सर चर्चा नहीं करते। किन्तु अगर मैं उससे कहूँ कि मैं सचमुच उससे ईर्ष्या करता हूँ, तो वह ज़रूर खिलखिला कर हँस पड़ेगा "ईर्ष्या? भला किसलिये? चौदह सौ मासिक वेतन के लिये? भाई जान, तुम गुजारा करके देखो, तो मानूं!" परिवार के अन्य सदस्यों की ही तरह उसे भी मुझ पर गहरा गर्व है। वह यह ज़रूर सोचता है कि मेरी आदतें बहुत बिगड़ गयी हैं और इसको लेकर वह कभी-कभी हल्के से मज़ाक भी कर देता है, किन्तु अब वह इस नतीजे पर पहुँच गया है कि मेरे लिये 'ये आदतें' बिल्कुल स्वाभाविक हैं और इसमें ग़लत कुछ नहीं है।

लेकिन मौका पड़ने पर वह मजाक करने से नहीं चूकता "यार कुछ ही कह लो, तुम्हारी ज़िन्दगी आसान नहीं है। खुदा का शुक्र है कि कम-से-कम तुम्हें शतरंज खेलना आता है वरना तुम्हें तो सब्ज़ी में नमक डालने के भी लाले पड़ जाते।" जब मैं लकड़ी काटता हूँ तो वह प्यार-भरी फब्तियाँ कसना नहीं भूलता, जब मैं सेब तोड़ने पेड़ पर चढ़ता हूँ तो उसका चेहरा भयाक्रान्त-सा हो जाता है, और जब मैं कोई औजार उठाता हूँ उसका दिल तेज़ी से धड़कने लगता है कि कहीं मैं हाथ-पैर न तोड़ डालूं। मैं झुंझलाकर उससे कहता हूँ कि आखिर मैं उसका भाई हूँ··· जिस व्यावहारिक-दुनिया में वह इतने सुरक्षित ढंग से रस-बस सकता है, भला मैं उसमें क्यों नहीं रह सकता!

हर आदमी की तरह मैं भी सुखी जीवन चाहता हूँ। पता नहीं क्यों, मेरे मन में यह बात बैठ गयी है कि एलबर्ट सुखी है। जब कभी मैं उसके बारे में सोचता हूँ, बरबस मेरे होंठ मुस्कराहट में खुल जाते हैं। अपने भयानक 'रेडी-मेड' सूट में (जिसकी वह मुंह खोलकर तारीफ़ करता है, क्योंकि वह उसे बहुत सस्ते में मिल गया था) वह सारे शहर का चक्कर लगाता है, कोई आदमी ऐसा नहीं जिससे उसे दो-चार बातें न करनी हों···। लगता है ज़ाह्रोरी के हर निवासी के पारिवारिक सुख-दुःख से वह पूरी तरह वाकिफ़ है। बिल्ली की तरह उसे हर चीज़ के प्रति उत्सुकता

है। पेन्शनयाफ़्ता लोग उसके दफ़्तर में आते हैं और वह अर्ज़ियाँ भरने में उनकी मदद करता है। सरकारी कानूनों से अनभिज्ञ बूढ़ी औरतें उसकी सलाह माँगने आती हैं। उसका घर हमेशा मेहमानों से भरा रहता है। जब तक पास पैसे रहते हैं, सबको कॉफ़ी पिलाता है और खुद सबके बीच बादशाह की तरह उस पुरानी आरामकुर्सी पर बैठा रहता है— जिसकी सीट से घास और रुई की थिगलियाँ बाहर डोलती रहती हैं। जब जेब खाली हो जाती है तो वह अपनी लम्बी शामें बियर-पब में 'मार्यांश' खेलने में गुजार देता है। चूँकि पैसों की कमी हमेशा रहती है, उसका सबसे बड़ा स्वप्न यह है कि किसी दिन लॉटरी जीतेगा। हर हफ़्ते वह नौ क्राऊन में लॉटरी का टिकट खरीदता है। एक बार उसने नौ सौ क्राउन जीते भी थे।

उसके सबसे घनिष्ठ मित्र मास्टर सूखी हैं—स्कूल के मास्टर। छोटी दाढ़ी वाले पियक्कड़, लम्बी भूरी आँखों वाले नीतिज्ञ। मास्टर सूखी को यह खयाल हमेशा सताता रहता है कि हमारे देश के बुद्धिजीवियों के प्रति घोर अन्याय किया जा रहा है। यों भी वे अन्यायों के संग्रहकर्त्ता हैं। जब कहीं वह सच्चा या सिर्फ़ काल्पनिक अन्याय होते देखते हैं, वह कुछ इस तरह संत्रस्त हो जाते हैं मानो दुनिया का अन्त होने जा रहा है। आखिर कौन-सी चीज़ इन दो आदमियों को एक-दूसरे प्रति आकर्षित करती है, मैं आज तक इस भेद को समझ पाने में असमर्थ रहा हूँ। वे हमेशा एक-दूसरे से झगड़ते रहते हैं। मास्टर सूखी किसी ज़माने में सोशल-डेमोक्रेट थे और एलबर्ट इस बात को लेकर अक्सर ताने कसता है, जबकि मास्टर सूखी की शिकायत यह है, कि एलबर्ट धीरे-धीरे प्रोपोगेण्डा का शिकार होता जा रहा है। "बस-बस···· बहुत हो गया" मास्टर साहब चिल्लाते हैं "कसम खुदा की···· अब तुम्हारी शक्ल भी देखूँ।" एलबर्ट-निर्विकार होने का उपक्रम करता है— जैसे उसने मास्टर सूखी की बात सुनी ही न हो। वह चिलमची में पानी भरकर लाता है और कुत्ते के बालों से मक्खियाँ निकाल-निकालकर उसमें डालता जाता है। मास्टरजी फटाक से दरवाज़ा बन्द करके बाहर की तरफ़ लपक जाते हैं।

मास्टर सूखी ज्यादा-से-ज्यादा दो दिनों तक नाराज़ रहते हैं। "तुम्हारे पास मेरी कुछ किताबें थीं" वह काँपते स्वर में कहते हैं—और यह जतलाने के लिये कि वे सचमुच किताबें लेने आये हैं, अपनी बरसाती भी नहीं उतारते।

"तुम जानते हो और मैं भी जानता हूँ कि तुम किताबें लेने नहीं आए···" एलबर्ट हिकारत-भरे ढंग से हँसते हुए कहता है "किताबों के लिए तुम क्लास को भी भेज सकते थे।" "मेहरबानी करके जल्दी वापस करो वे किताबें··मुझे जाना है।" मास्टर सूखी रुआँसे स्वर में कहते हैं। एलबर्ट उदास भाव से सिर हिलाता है और चेहरे पर गहरा ग़मग़ीन भाव लिये कहीं भीतर चला जाता है। कुछ देर बाद जब वह वापस लौटता है तो किताबों के बजाय उसके हाथ में एक थैला होता है। थैले में हाथ डालकर कुछ टटोलता है और फिर सहसा उसमें से मुट्ठी भरकर बढ़िया किस्म के 'मशरूम' (जंगली गुच्छियाँ) मास्टर साहब की नाक के नीचे फैला देता है। एक क्षण में ही मास्टर सूखी अपने सम्बन्धों की ट्रेजिक स्थिति को भूल जाते हैं। गुच्छियों को देखते ही उनकी बाछें खिल जाती हैं, ताली बजाकर ठहाका लगाते हैं और खुशी से चिल्लाते हैं "क्या अभी से उगना शुरू हो गयीं? कहाँ मिल गयीं तुम्हें?"

एलबर्ट रहस्य-भरे भाव से अपनी आँखें दबाता है और दूसरे ही क्षण दोनों 'गैराज' में दाखिल हो जाते हैं। भीतर से दमा-पीड़ित इंजन की खँखराहट सुनायी देती है और फिर एलबर्ट की फियाट मोटर बाहर आती है—एक अति-प्राचीन खंडहर—जिसे एलबर्ट ने दस साल पहले पानी के भाव खरीदा था। ढीले दरवाज़ों की कर्णभेदी गड़गड़ाहट और गियर-बॉक्स की वीभत्स आवाजों को आस-पास बिखेरते हुए मोटर दोनों दोस्तों को जंगल में ढो लाती है। पेड़ों के तनों के बीच अपनी आँखें चिपकाए दोनों आदमी सीटी बजाते हुए घूमते रहते हैं और जब किसी एक को कोई गुच्छी मिल जाती है तो दूसरा उसे बहुत कोमल-स्वर में गन्दी-से-गन्दी गाली देने में नहीं चूकता।

किताबें पढ़ने का शौक एलवर्ट को बहुत शुरू से रहा है। पिछले वर्षों में उसे कहानी-उपन्यासों से नफ़रत हो गयी है और अब वह सिर्फ़ ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ता है। अर्थ विज्ञान में उसकी समझ पार्टी के किसी भी उच्च शिक्षित सदस्य से कम नहीं है। अणु-विज्ञान में भी उसकी गहरी दिलचस्पी है। पिछली वार जब मैं घर आया था, उसने मुझे 'वाइनरी सिस्टम' (Binary System) समझाने की कोशिश की थी किन्तु जब उसने देखा कि मैं छोटी-से-छोटी से वात भी नहीं पकड़ सकता तो उसका धैर्य छूट गया था। सिनेमा जाना उसे खास पसन्द नहीं किन्तु कभी-कभी वीवी और लड़कियों के दवाव डालने पर उसे जाना ही पड़ता है। दूसरी तरफ खेल-प्रतियोगिताओं में वह गहरी रुचि लेता है, उसे सब खिलाड़ियों के 'रिकार्ड' जुवानी याद हैं। शायद ही ऐसा कोई स्थानीय मैच रहा हो, जो उससे छूट गया हो। मास्टर सूखी के साथ वह अक्सर अपनी शहरी-टीम की ट्रेनिंग देखने जाता है। गोल के पीछे खड़े होकर वे दोनों खिलाड़ियों को ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते हुए सलाह देते हैं और वाद में सन्तुष्ट होकर खुशी-खुशी स्वयं भी फुटवाल की दो-चार किकें गोल में लगाना नहीं भूलते।

१०

स्टेशन से घर तक मैं और एलबर्ट चुपचाप चलते रहे। बीच में लीपा एवेन्यू आती थी जो इस समय बर्फ़ की दलदल से भरी थी। ट्रेन से जो मुसाफ़िर उतरे थे, वे धीरे-धीरे हमसे आगे बढ़ गये। कुछ दूर आगे जाकर हमें पहाड़ों की तरफ़ सरकती हुई ट्रेन की सीटी सुनायी दी थी। करीब पच्चीस वर्ष पहले इस इलाके में चीतों की दहाड़ें सुनायी देती थीं। जून का महीना था जब उन दिनों हमारे शहर में सर्कस आया था। शहर के लोग स्टेशन पर टूटे पड़ते थे। वे यह देखने के लिये बेताब थे कि कैसे जानवरों को ट्रेन के डब्बों से बाहर निकाला जाता है। माँ और पिताजी फुव्वारे के पास वाले बियर-पब में बैठे थे। मैं भागता हुआ उनके पास आया था, सिर्फ यह कहने के लिये कि मैंने हाथी देखा है। उन्होंने चॉक-लेट खरीद कर मुझे दी थी।

एलबर्ट मेरे सूटकेस को खुद पकड़ कर ले जाना चाहता था। कुछ देर

तक हम दोनों ही खींचातानी करते रहे—आखिर हार मानकर उसने कहा कि कम-से-कम फूलों का गुच्छा तो वह उठा ही सकता है। यह और भी वदतर वात थी। मैं नहीं चाहता था कि वह जुआ के फूल उठाकर चले। आखिर तय यह हुआ कि हम दोनों ही सूटकेस उठाकर चलेंगे—एक प्रतीक के तौर पर।

वीच रास्ते में एक वार मुझे रुकना पड़ा था। एलवर्ट को ज़वरदस्त खाँसी का दौरा आ गया था। सामने वान्या-परिवार के घर की खिड़कियों से हल्की-सी रोशनी वाहर आ रही थी। वान्या के दोनों लड़के अकेले रहते हैं। वाप लड़ाई के दौरान चल वसे, माँ पिछले वर्ष मोटर-साइकल के नीचे आकर खत्म हो गयीं।

"तुम्हारी खाँसी वरावर कायम है···किसी अच्छे डॉक्टर को क्यों नहीं दिखाते ?

उसने कंधे सिकोड़कर वात रफ़ा-दफा कर दी।

"रोज़ी तुम्हारे पास ही रहती है? मैंने पूछा। मैंने तुम्हें नहीं वताया

"क्या नहीं वताया ?"

"रोज़ी के वारे में ? मेरे तो होश ही नदारद हो गये थे। सव लोग घवरा गए थे। उसे ढाँढ़स वँधाना मेरे वूते के वाहर था। तुम जानते ही हो, माँ उसके लिए कितना वड़ा सहारा थीं। दिन-रात रोती-चीखती रहती है···कहने लगी कि माँ के वाद उसका जीना वेकार है और आज···आज दोपहर को हमने देखा कि वह विस्तर पर विल्कुल वेहोश पड़ी है। मैं भागता हुआ डॉक्टर को वुलाने गया। इन्जेक्शन दिया गया है। तव से चुपचाप सो रही है। उसके वारे में सोच कर मुझे काफी चिन्ता होती है।"

"एलवर्ट, क्या मैं आज रात तुम्हारे यहाँ सो सकता हूँ ? घर में मुझे काफी अकेलापन महसूस होगा।"

"हमारे यहाँ नहीं, तो और कहाँ सोओगे ? घर में तो माँ लेटी हैं।"

एलवर्ट को चलते समय बोलते हुए इतनी परेशानी होती थी कि हमें बार-बार रास्ते में रुकना पड़ता था। वह काफी कठिनाई से मुझे बता पाया कि किस तरह वे अस्पताल से माँ का शव घर लाये थे।

माँ को जिस घड़ी कफ़न में रखने के लिये कपड़े पहनाये जा रहे थे, रोज़ी पछाड़ खाकर गिर पड़ी थी। उसे ही एलबर्ट के साथ माँ को कपड़े पहनाने जाना था--किन्तु वह मूर्च्छित हो गयी थी और चूंकि एलबर्ट की पत्नी व्लास्ता मुरदों से डरती थी, एलबर्ट को अलेन्का के साथ ही माँ को कफ़न में लिटाने के लिए अस्पचाल के 'शव-कक्ष' में जाना पड़ा था। वहाँ का दृश्य देखकर वह आतंकित-सा रह गया था। माँ रात के कपड़ोंमें नंगे कंक्रीट के फर्श पर लेटी थीं, उनका सिर एक ऐसे गन्दे चीथड़े पर टिका था जिससे फर्श साफ किया जाता है। चारों तरफ टूटी हुई कुर्सियों या लोहे के पलंगों के उखड़े हुए टुकड़े बिखरे पड़े थे। एक कोने में खून से लिपटी पट्टियों का ढेर लगा था। माँ के सिर के पास ही भीगे चूने से भरी चिलमची रखी थी।

"यह जगह न ज़िन्दा लोगों के लिये है, न मुरदों के लिये।" एलबर्ट ने डॉक्टर से कहा "अस्पताल के डायरेक्टर कहाँ हैं ?"

डॉक्टर श्लापाक गुस्से में लाल हो गये और उन्होंने एलवर्ट को सुपरिन्टेन्डेन्ट के पास भेज दिया।

सुपरिटेन्डेंट मीका एलवर्ट के वाकिफ़ निकले…शहर की पार्टी-कमेटी के सदस्य।

"अस्पताल का मुरदाघर देखा है ?" एलबर्ट ने मीका से कहा "उस नरक में मैं माँ को नहीं छोड़ूंगा।"

शव को अस्पताल से बाहर ले जाने पर उन्हें आपत्ति नहीं थी किन्तु ऐसा सिर्फ़ स्थानीय राष्ट्र-समिति की अनुमति मिलने पर ही किया जा

सकता था। दुर्भाग्यवश उस समय तक दफ़्तर बन्द हो गये थे। सुपरि-न्टेन्डेन्ट साहब कुछ देर तक तो अपनी ज़िद पर अड़े रहे कि वे सरकारी -नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकते। आखिर में मुश्किल से राज़ी हुए। मुरदों के लिए एम्बुलेन्स गाड़ी इस्तेमाल नहीं की जा सकती, अतः किसी तरह एक स्ट्रेचर और कफ़न की व्यवस्था की गयी। शाम होने पर एलबर्ट माँ को एक म्यूनिसिपल लारी में घर लाया था।

"वह भी कैसा दिन था!" एलबर्ट ने अन्त में कहा, "तुम मेरी परेशानी की कल्पना नहीं कर सकते। हमने बेचारी माँ को पीछे के कमरे में लिटा दिया था···।"

एलबर्ट की बात सुनकर मैं सन्नाटे में आ गया। लगा, जैसे मेरा खून जम गया हो। माँ स्वभाव से अत्यन्त शिष्ट थीं। यदि उन्हें पता चलता कि लोग उन्हें लेकर एक-दूसरे से लड़े-झगड़े हों··· मृत्यु के बाद ही सही, तो उन्हें काफी क्लेश होता। उनका शव पीछे वाले कमरे में रखा था··· बड़े दोहरे बिस्तर पर। जिन्दगी में वे कभी इस बिस्तर पर-नहीं सोयी थीं। धीरे-धीरे यह मेरा कमरा बन गया था और मैं वहाँ सोया करता था··· मार्था के साथ··· मैं उन भयानक रातों में मार्था के साथ वहाँ सोया करता था जब हम दोनों ही एक-दूसरे को बर्दाश्त नहीं कर पाते थे और बिना सोये ही हर रात गुज़र जाती थी। माँ अपना बिस्तर हमेशा रसोई में लगाती थीं—अलमारी के पास, जिस पर बड़ी घड़ी रखी रहती थी। घर की बिल्ली रात के समय भी घड़ी की सूइयों को घुमाती रहती थी।

"बिल्लियाँ कहाँ हैं? मैंने लगभग चिल्लाते हुए पूछा। एलबर्ट चौंक-सा गया, किन्तु फिर उसने मेरा हाथ थपथपाते हुए कहा, "मैं जानता हूँ तुम क्या सोच रहे हो··· घबराओ नहीं, मैंने दरवाज़े की कुण्डी लगा रखी है।"

"वह खुलेगी तो नहीं?"

"नहीं।"

कभी-कभी जब मैं पिछवाड़े वाले कमरे में काम किया करता था, बिल्लियाँ रसोई के क़ैदखाने से ऊबकर दरवाज़े को पंजों से कुरेदते हुए म्याऊँ-म्याऊँ किया करती थीं ताकि मैं अपने कमरे में उन्हें आने दूँ। कुछ देर बाद जब वे बिल्कुल निराश हो जातीं तो उछलकर दरवाज़े के हैंडिल को अपने पंजों से पकड़ लेतीं और बिजली की तरह छलाँग लगा कर भीतर कूद आतीं। इस खयाल ने मुझे चिन्तित-सा कर दिया था। मुझे डर था कि दोनों बिल्लियाँ घर की मालकिन को आस-पास न देख-कर दरवाज़े पर हमला कर बैठेंगी··· कुण्डी हमेशा की तरह खुल जायेगी और भीतर जाकर वे क्या करेंगी, इसकी कल्पना भी मैं नहीं कर सकता था।

"बेहतर यह होगा, कि तुम बिल्लियों को अपने घर ले जाओ।" मैंने एलबर्ट से कहा।

"घबराओ नहीं··· कुण्डी मैंने अपने हाथ से लगायी है। हमारे घर में पहले से ही कुत्ता और बिल्ली हैं··· इन बिल्लियों को ले जाऊँगा तो खून-खराबा मच जायेगा।"

हम नीचे आकर लम्बी अन्धेरी गली में चलने लगे। बीच-बीच में पत्थरों के ढेर लगे थे जिन्हें सड़क खोदते हुए बाहर निकाला गया था। पीछे स्क्वायर में वह मकान था जिसके अकेले कमरे में माँ बिना हिले-डुले लेटी थीं। गली में चलते हुए मुझे लग रहा था कि उस कमरे से दूर होते ही मैं एक ऐसी अज्ञात, नियतिबद्ध यात्रा पर चल निकला हूँ जिसका अन्त बिल्कुल अनिश्चित है।

एलबर्ट शहर के बाहर एक छोटे-से बंगले में रहता है··· पीछे आधे एकड़ तक फैला बाग़ है। 'खलियान के आगे बिल्कुल अन्धेरा रहता है और आदमी को अपनी स्मृति से खेत की पगडण्डी ढूंढ़नी पड़ती है जिसके दोनों ओर काँटेदार जाली लगी रहती है। हम दलदल में रास्ता बनाते हुए चल रहे थे। एलबर्ट की टॉर्च की रोशनी में कीचड़ पर जमे ट्रैक्टर

के आड़े-तिरछे निशान चमक जाते थे। चलते-चलते एक बार मेरे पैर एक गढ़हे में जा गिरे थे और मैं घुटनों तक कीचड़ में धँस गया था। सूटकेस और जुज़ा के फूलों के कारण मुझे चलने में काफ़ी दिक्कत महसूस हो रही थी। सहसा मैं जुज़ा के बारे में सोचने लगा। उसका खयाल उस क्षण मुझे उतना ही अप्रीतिकर महसूस हुआ जितनी वह गीली जुराब जो मेरे पैर से चिपकी थी।

"चोट तो नहीं आयी?" एलबर्ट ने मेरी ओर टॉर्च घुमा दी, "बस, अब पहुँच गये! घर जाकर गर्म चाय और रम पियेंगे। याद है, माँ हमेशा इस रास्ते से नफ़रत करती थीं? सर्दियों में तो हफ़्ते गुजर जाते और वे हमारे घर ही नहीं आती थीं··· सिर्फ इस रास्ते की वजह से।"

आखिर बँगले का जालीदार गेट दिखायी दिया। खिड़कियों के नीचे घास पर दो पीले चौकोर दिखायी दिये, जिनके आलोक में एक पतला-सा आलूचे का वृक्ष खड़ा था··· रंगमंच के खम्भे-सा। एलबर्ट ने दरवाज़ा खोलते हुए घन्टी का बटन दबाया। घर के पिछवाड़े कोई कुत्ता भौंकने लगा। सीढ़ियों पर दूधिया-रोशनी का धब्बा चमक रहा था।

व्लास्ता देहरी के पास चली आयी। उसने काज़ान को पट्टे से पकड़ रखा था ताकि कहीं बाहर जाकर वह अपने पंजे गन्दे न कर आये। काला अल्सेशियन कुत्ता उसे ज़ोर से घसीट रहा था। व्लास्ता ज़ोर से चिल्ला उठी, "जल्दी भीतर आ जाओ··· मैं इसे कब तक पकड़े रहूँगी।"

११

मुझे अब ठीक से याद नहीं कि व्लास्ता स्टाख से एलबर्ट का विवाह उन्नीस सौ छत्तीस या सैंतीस में हुआ था, लेकिन इतना ज़रूर याद है कि इस विवाह ने सारे शहर को अचम्भे में डाल दिया था। माँ और पिताजी भी काफी नाराज़ हुए थे और पहली वार मैंने उनके मुंह से विदेशी शब्द सुना था... (Mesalliance) बेजोड़ विवाह। "अरे भई, हमने सुना है तुम्हारा भाई व्लास्ता से शादी कर रहा है?" मेरे दोस्त अक्सर मुझसे पूछा करते थे और धीरे से यह जोड़ना नहीं भूलते थे, 'उसका दिमाग़ तो ठीक है?' मैं उन दिनों कमर्शियल स्कूल के डायरेक्टर श्री लीडले के मोटे से लड़के को ट्यूशन पढ़ाने जाया करता था। एक दिन उन्हें इतना भी ख़याल नहीं रहा कि मैं दूसरे कमरे में बैठा हूँ...अपनी पत्नी से एलबर्ट के विवाह का किस्सा छेड़ते हुए उन्होंने भी वह विदेशी शब्द इस्तेमाल किया था "मानो न मानो मैं तो इसे विल्कुल Mesalliance ही कहूँगा।

इस खबर को सुनने से पहले मैं सोचा करता था, कि एलबर्ट अवश्य ही यान्का फिशर से विवाह करेगा। तीन वर्षों से वे लगातार एक-दूसरे के साथ दिखायी देते थे। यान्का थी भी हजारों में से एक। चाहे सर्दी हो या गर्मी, उसका चेहरा धूप में हवा-सा जान पड़ता था, लड़कों के से छोटे-छितरे बाल थे और गोल-गोल काली आँखें। टेनिस खेलने में भी उस्ताद थी और गेंद उठाने वाले सब लड़के उस पर लट्टू थे। बड़े भाई को प्यार करती थी तो उसका कुछ हिस्सा छोटे भाई को भी मिलता था। वह अक्सर मुझे अपने से चिपटा कर मेरे बालों से खेलने लगती। मुझे यह बुरा लगता कि वह मुझे छोटा-सा बच्चा समझती है और अपने को छुड़ा-कर भाग जाने की इच्छा होती। लेकिन मैं भाग न पाता.... अपने को अपराधी-सा महसूस करता हुआ मैं उसकी देह की गन्ध में आत्म-विभोर-सा हो जाता.... एक अजीब स्वच्छता की गन्ध उसकी देह से आती थी।

आज भी मैं समझ नहीं पाता कि एलबर्ट और यान्का ने एक-दूसरे से नाता क्यों तोड़ लिया। माँ का कहना था कि एलबर्ट ने सिर्फ़ यान्का को जलाने के लिये व्लास्ता से शादी की थी.... उसके पीछे सिर्फ़ एलबर्ट की बेवकूफी और ज़िद के अलावा कोई दूसरा उद्देश्य नहीं था और हालाँकि माँ और व्लास्ता के बीच तनातनी नहीं थी...अतान्का के पैदा होने पर तो उनके संबंध और भी अच्छे हो गये थे...किन्तु फिर भी माँ की उप-स्थिति में व्लास्ता हमेशा अजीब संकोच में जकड़ी-सी रहती थी। वह माँ को कुछ इस तरह खुश करने की चेष्टा करती थी मानो वह उनकी कर्जदार हो।

पिताजी कहा करते थे कि व्लास्ता के माँ-बाप पहले ऐसी नाटक-मण्डलियों में काम किया करते थे जो एक शहर से दूसरे शहर घूमती रहती हैं। यह सिर्फ इसलिए नहीं कि व्लास्ता के पिता फेलिक्स स्टाख जो अब नाई थे—स्थानीय शौकिया थियेटर में लोकप्रिय कॉमेडियन का पार्ट भी बड़ी सफलता से अदा किया करते थे। लोग फेलिक्स स्टाख के बाल कटाने वाले सैलून में कुछ उसी तरह जाया करते थे जैसे किसी शराब-घर में।

नाई की कल्पना सातवें आसमान को छूती थी.... बात चाहे कितनी ही छोटी क्यों न हो, वे उसे कुछ इस तरह बढ़ा-चढ़ाकर सुनाते थे कि लगता था जैसे किसी नावेल की सम्पूर्ण गुत्थियों-भरी कथा सुना रहे हों। सत्य का अंश उसमें बहुत कम रहता था और शायद इसीलिए अनेक बार उन पर मानहानि के मुकद्दमे भी चल चुके थे। एक बार टैक्स न देने के कारण पुलिस उनके घर की चीज़ों को ज़ब्त करने भी आयी थी.... कहते हैं, इन्सपेक्टर के सामने उन्होंने उस्तरे से अपनी कलाई की नस काट डाली--लेकिन ऐसी जगह, जहाँ नस-वस कुछ नहीं थी। उसके बाद हफ़्तों तक वे पट्टी चढ़ाए रहे-- और यह दिखाने के लिये कि उन पर ज्यादती की गयी है वे कुछ-कुछ लँगड़ाकर भी चलते थे।

वह अपने चटपटे किस्से ज़रा आवाज़ उठाकर सुनाया करते थे ताकि परदे के पीछे भी उनकी आवाज़ सुनी जा सके। परदे के पीछे महिलाओं का सैलून था जहाँ उनकी पत्नी काम किया करती थी। उनके किस्सों को सुनते हुए औरतों की खिलखिलाहट सुनायी दे जाती। बीच का हरा परदा कुछ इसी तरह रहस्यपूर्ण लगता जैसे बॉलरूम में मुखौटों के पीछे छिपे चेहरे लगते हैं--और इससे श्री स्टाख के सैलून का वातावरण कुछ अधिक रसीला हो जाता।

हर बार अट्ठाइस अक्तूबर के राष्ट्रीय-दिवस पर फेलिक्स स्टाख इतालवी 'लिजवरी' की वर्दी पहनते थे। जलूस में हिस्सा लेने से पहले वह बड़े ठाट-बाट से हरी टोपी पहनते, जिस पर मोर-पंख लगा रहता। उनकी पतली टाँगों पर खाकी पट्टियाँ लिपटी रहतीं और जलूस शुरू होने पर वे छाती फुलाये कदम पटक-पटक कर आगे चलते। फिर नेशनल-क्लब में जाकर डटकर शराब पीते। जब धुत हो जाते तो मेज पर चढ़ कर मासारिक की तस्वीर को छूने की कोशिश करते, प्रेजीडेण्ट की दाढ़ी को चूमते हुए कहते "बाबाजी, मैं तुम्हारी शान में कभी बट्टा नहीं लगने दूँगा।" श्रीमती स्टाख उन्हें टाँग से पकड़ कर नीचे खींचने की कोशिश करतीं। नीचे उतर कर वे बीवी को तीन-चार चाँटे रसीद करना न भूलते।

पिता के कारोबार में व्लास्ता भी हाथ बटाती थी। मैं उसे हमेशा सफेद कोट में सैलून के आगे बैठा देखा करता था। स्टाख-परिवार के अन्य सदस्यों की ही तरह उसका नाक-नक्श अपनी माँ पर गया था। उसके बालों और चेहरे का रंग काफी स्याह था--- जिप्सी की तरह। उसे उन दिनों तड़क-भड़क वाले कंगन और इयरिंग पहनने और पेंट-पाउडर लगाने का शौक था। उन दिनों (और आज भी) उसका वक्षस्थल ऊँचा और टाँगें पतली हैं। जब कभी कोई फौजी अफसर दुकान के आगे से निकलता, वह इतराकर उसकी ओर देखती और कुछ अर्थपूर्ण भाव से अपनी आँखें मींच लेती, जिसके परिणाम-स्वरूप उसकी आँखें भयानक-रूप से भेंगी हो जातीं। हम कहते कुछ नहीं थे किन्तु उस समय भी जब मैं पाँचवीं जमात में पढ़ता था-- हमें उसका डील-डौल काफी हास्यास्पद-सा जान पड़ता था। एक दिन हमारे शहर में सर्कस के खिलाड़ी आये थे जो रस्सी पर चलने के करतब दिखाते थे। उनमें से एक आदमी ने-- जिसने चीते की खाल की निकर पहन रखी थी---लाउडस्पीकर से भीड़ को सम्बोधित करते हुए कहा कि यदि कोई व्यक्ति रस्सी पर चलना चाहता है, तो अपनी शक्ति आज़मा सकता है। भीड़ के आदमियों को खुला बुलावा दिया गया था। कोई आगे नहीं आया--सिवाय व्लास्ता के। वह फुर्ती से सीढ़ियां चढ़ गयी और ऊपर पहुँचकर उसने सर्कस के 'टार्जन' से हाथ मिलाया। किन्तु सहसा इतनी ऊँचाई पर अपने को पाकर वह डर गयी। और "वाह, कैसा गजब का आदमी था" नीचे सड़क पर दोबारा आकर उसने शरमाते हुए कहा था। उसे इस बात की ज़रा भी चिन्ता नहीं थी कि जब वह सीढ़ियाँ चढ़ रही थी, भीड़ के लोगों ने सीटियाँ बजाकर उसका मज़ाक उड़ाया था। मुझे याद है कि उस समय मैं बिल्कुल नहीं हँस सका था··· खुद उसकी तरफ़ से संकुचित होकर मैं ज़मीन की तरफ देख रहा था मानो मेरे सामने कोई अश्लील-सी घटना घट रही हो।

मुझे कभी-कभी काफ़ी हैरानी होती है कि व्लास्ता में शर्म नाम-मात्र को भी छू नहीं गयी है··· उसे क्षण-भर के लिए भी इस बात का आभास नहीं होता कि दुनिया की नज़रों में वह कितनी हास्यास्पद

दिखायी देती है। इतवार के दिन वह खूब सज-बनकर स्क्वायर के सामने टहलने आती है··· सस्ते, रुचिहीन फैशन के कपड़ों में इठलाती हुई। उसे यह जानकर बहुत प्रसन्नता होती है कि लोग गर्दनें उचकाकर उसकी ओर देखते हैं··· उनकी हिकारत-भरी नज़रों में उसे प्रशंसा के अलावा और कुछ नहीं दिखायी देता।

अब याद नहीं आता कैसे उन दिनों व्लास्ता धीरे-धीरे यूनिवर्सिटी के छात्रों की टोली में घुल-मिल गयी, जिसका लीडर एलबर्ट था। वे एक साथ मिलकर टेनिस खेलने, स्कीइंग करने या तैरने जाया करते थे। संभव है, लड़कों की वर्दियों ने उसे आकर्षित किया हो। यह भी संभव है कि उनकी भावी यूनिवर्सिटी डिग्रियों ने भी अपना प्रभाव उस पर डाला हो। सब लड़के-लड़कियाँ एक-दूसरे को बचपन से जानते थे। घरवालों की उस पर कोई रोक-टोक नहीं थी··· देर रात तक वह बाहर रह सकती थी, हर खेल-तमाशे में बराबर का हिस्सा लेती थी, नाचने में भी किसी से पीछे नहीं थी। उन गर्मियों में—जब एलबर्ट का विवाह हुआ था—सारी टोली ने नदी के पास तम्बू लगाकर छुट्टियाँ गुज़ारी थीं। जेनी को उसके पिता ने नहीं जाने दिया। व्लास्ता हमेशा की तरह टोली में शामिल थी। कितना अजीब है, यह बात मुझे पहले कभी नहीं सूझी थी। शायद एलबर्ट के रहस्यपूर्ण प्रेम-विवाह की कुञ्जी कहीं इन्हीं गर्मी की छुट्टियों में छिपी है।

बचपन में व्लास्ता के 'करतबों' को देखकर मुझे जो हार्दिकक्लेश होता था, मुद्दत से मैं उसे उसके लिए क्षमा कर चुका हूँ। बातूनी वह अब भी है, और सुबह से शाम तक किलकारियाँ भरती रहती है। जितना ही मैं अपने बारे में और प्राग में रहने वाले लोगों के बारे में सोचता हूँ. उतना ही मुझे महसूस होता है कि व्लास्ता जैसी लड़की को, जो एक दिन रस्सी पर चलने के लिए तैयार हुई थी, बुरा-भला कहने का मुझे कोई अधिकार नहीं··· और मैं इसके योग्य भी नहीं हूँ। अब हम घंटों एक-दूसरे से गप्पें लगाते हैं। व्लास्ता को हमेशा आश्चर्य होता है कि मैंने

दूसरी शादी क्यों नहीं की और वह बराबर मेरे भेदों की टोह लगाने की कोशिश करती है। जब मैं कभी-कभी उसकी लड़की अलान्का की सह-पाठिनों से दो-चार बातें हँस-बोलकर करता हूँ, तो वह विजय-भाव से मुस्कराती है। वह अक्सर मुझे अँगुलियों पर नचाती है, चिढ़ाती है और शादी के संबंध में छिपे-खुले संकेत करने से बाज़ नहीं आती।

घर-गृहस्थी के काम में व्लास्ता की अपटुता माँ को हमेशा अखरती रहती थी। माँ की यह राय कि व्लास्ता घर का काम ठीक से नहीं सँभाल पाती, बिल्कुल ही सही नहीं थी। दरअसल देखा जाये तो बेचारी व्लास्ता अपने बिखरते घरबार को सुचारु रूप से जुटाने के लिए भरसक जी-तोड़ कोशिश करती थी, हालाँकि इसका ढंग उसे बिल्कुल नहीं आता था। जब तक वह कपड़ों में बटन लगाती, रसोई में ढेर-से गन्दे बर्तनों का अम्बार जमा हो जाता, और जब रसोई को साफ किया जाता तो कपड़े बिना बटनों के रह जाते। घर-गृहस्थी का काम उसके लिए दस सिर वाले राक्षस से लड़ाई करने की ही तरह दुर्गम था—एक सिर काटती, तो दूसरा मौजूद हो जाता। उसने हार नहीं मानी थी, लेकिन कहीं भीतर यह विश्वास जम गया था कि जिस राक्षस से वह संघर्ष कर रही है, वह मरने वाला नहीं। शायद इसी विश्वास ने उसके भीतर एक निश्चित-सी साहसिकता भर दी थी।

एलबर्ट की ही तरह व्लास्ता को भी भरा-पूरा घर अच्छा लगता था, चाहे मेहमानों की खातिर-तवज्जो करने के लिए पड़ोसी से उधार ही क्यों न लेना पड़े। "इस घर में एक कानी कौड़ी भी नहीं बचेगी।" एलबर्ट महीने में कम-से-कम एक बार यह वाक्य ज़रूर दुहराता है। दोनों ही हिसाब की कापी लेकर खर्च जोड़ने बैठ जाते हैं "तुम तो महरानी की तरह लोगों की खातिर करती हो। आदमी को अपनी बिसात देखनी चाहिये।" रोते-रोते व्लास्ता की नाक सुर्ख हो जाती है, "बस, कल से यह किस्सा खत्म!" एलबर्ट कहता है, "तुम्हारे मेहमानों ने मेरी नाक में दम कर रखा है··· कल चाहे कोई भी घंटी बजाये, मैं दरवाज़ा

खोलने नहीं जाऊँगा।" भाग्य की बात, दूसरे दिन सचमुच कोई नहीं आता। एलबर्ट भौंहें चढ़ाकर पढ़ता रहता है, व्लास्ता लम्बी साँसें भरती है। और दोनों के कान दरवाज़े की घन्टी पर लगे रहते हैं। "आज फ़िल्म चल रही है न?" एलबर्ट घड़ी देखते हुए कहता है "हाँ आज फ़िल्म का दिन है।" व्लास्ता उत्तर देती है··· और चूंकि अभी सिर्फ साढ़े नौ बजे हैं, उसे मालूम है कि पौने ग्यारह तक घंटी बजने की कोई उम्मीद नहीं। फिर सब धड़ाधड़ करते हुए आते हैं— सूखी, हौन्ज़ा, तेसारेक, मिलादा और शहर के हेल्थ-इन्सपेक्टर डॉ० पावलास। दोनों को ही उनका आना अच्छा लगता है··· दोनों ही खेल के नियमों से परिचित हैं। व्लास्ता अपनी कुर्सी से टस-से-मस नहीं होती और तब एलबर्ट बड़े भोले ढंग से कहता है "भई, इन लोगों के लिए कुछ कॉफ़ी वगैरह नहीं बनाओगी?" वह एक चुभती हुई निगाह एलबर्ट पर डालते हुए भीतर जाती है और कॉफ़ी के अतिरिक्त मिठाइयों की तश्तरी भी मेज़ पर दिखायी देती है। शुरू में सब नू-नाँ करते हैं, लेकिन बाद में चटखारे ले-लेकर तश्तरी साफ कर देते हैं।

अपने पिता के पग-चिन्हों पर चलते रहने के कारण व्लास्ता के राज-नीतिक-विचार 'घोर प्रतिक्रियावादी' कहे जा सकते हैं। बरसों से उसके और एलबर्ट के बीच जो तीव्र राजनीतिक मतभेद चला आ रहा है, वह अब भी जारी है और भविष्य में उसका अन्त हो सकेगा, ऐसी संभावना नज़र नहीं आती। यद्यपि व्लास्ता के पिता साधारण नाई थे और हमेशा टैक्सों और बैंक के कर्ज़ों के बोझ तले दबे रहते थे, वह हमेशा अपने परि-वार की गणना उन लोगों में करती है, जिन्हें मज़दूर-राज ने हमेशा के लिए तबाह कर दिया है। उसने सब हिसाब लगा रखा है कि युद्ध से पहले वाली प्रथम रिपब्लिक में एलबर्ट का वेतन कितना होता, उसकी तनख्वाह में कितनी जल्दी तरक्की होती और रिटायर होने पर कितनी पेंशन मिलती। बात छिड़ते ही तूफ़ान खड़ा हो जाता है। चाहे हम कितनी ही कोशिश क्यों न करें— मैं, एलबर्ट और रोज़ी—कि बहस एक खास लीक पर चल सके, व्लास्ता की छुरी-जैसी ज़ुबान हमें भी भड़का

देती और हम स्कूल के बच्चों की तरह झगड़ा करने लगते कि किसका बाप ज्यादा ताक़तवर है। हम गुस्से में लाल-पीले होने लगते, एक-दूसरे का मज़ाक उड़ाते, ज़ोर-ज़ोर से बहस करते। जब कम्युनिज़्म की महानता दर्शाते हुए हम निःशुल्क स्वास्थ्य-सेवा इत्यादि का उल्लेख करते तो व्लास्ता लाइसेन्को के सिद्धांतों की आलोचना करती··· उसके मुकाबले में लोलोब्रिगेडा उसे ज्यादा पसन्द आती। कैनाडा और सोवियत-संघ के बीच बर्फ-हॉकी का मैच हमारे लिए संयुक्तराष्ट्र संघ की बहसों से कहीं अधिक राजनीतिक महत्त्व रखता था।

छुट्टियों के बाद जब अलेन्का कॉलिज जाने लगेगी तो परिवार का खर्च काफी अधिक बढ़ जायेगा। शायद इसी कारण व्लास्ता ने दुबारा नौकरी ढूँढी है। एक महीने तक उसने 'मुशावान' दुकान में कपड़े सीने का काम किया था, लेकिन समय पर कपड़े तैयार करना उसके बस की बात नहीं थी। अब उसने कारखाने के एक कैण्टीन में 'सेल्स गर्ल' की हैसियत से काम करना शुरू किया है। वह कभी-कभी पुराने समय की बातें याद करती हुई ठण्डी साँसें ज़रूर भरती है, जब वह पिता के सेलून में काम करती थी। कैसा ज़माना है, आजकल क्लर्कों, अध्यापकों और यहाँ तक कि डॉक्टरों की बीवियाँ भी काम करने जाती हैं। पहले इसकी कल्पना भी दूभर लगती। किन्तु सच पूछा जाये तो इन शिकवों-शिकायतों के बावजूद व्लास्ता आजकल जितनी संतुष्ट नज़र आती है, मैंने पहले उसे कभी ऐसा नहीं देखा। वह कैण्टीन में हर रोज मज़दूरों को बियर, रम, सॉसेज, बिस्कुट, भुनी हुई मछलियां इत्यादि चीज़ें बेचती है··· उनसे गप्पें लड़ाती है और वे मुग्ध भाव से उसकी बातें सुनते हैं। अपने ही तरीके से वह उसी जीवन्त हलचल और हमागमी के वातावरण में लौट आयी है, जो एक बार उसने अपने पिता के सेलून में पाया था और जिसका स्वाद वह आज तक नहीं भूल सकी है।

१२

"वह चार दिन तक बिस्तर पर पड़ी रही।" गुल्बर्ट ने कहा, "किन्तु जिस दिन बुखार उतरा, उसी दिन वह दुकान पर चली गयी। तुम तो जानते ही हो, उसका स्वभाव कैसा था।"

"बस, यह दुकान जाना घातक साबित हुआ।" ज्वाला ने जल्दी से कहा।

"तुमने अभी कहा था कि डॉ० बेन्जमिनक ने उन्हें कोई दवा दी थी? सल्फाथियाज़ोल ?"

"हाँ···· उन्होंने सोचा कि माँ को ब्रॉन्काइटिस है।"

दिल काफी कमज़ोर था जिसके कारण फेफड़ों में पर्याप्त खून नहीं पहुंचता था।"

"अरे, वह बड़ी डॉक्टर की भी खूब कही···· उसे हर जगह सूराख नज़र आते हैं। अपने को न जाने क्या समझती है।" व्लास्ता ने कुछ झुंझलाकर कहा, "सच पूछो तो येचिमिनेक काफी अच्छे डॉक्टर हैं।"

"हाँ···· बहुत अच्छे! मेरी आंख में मक्खी पड़ जाये तो उसे निकलवाने भी मैं उनके पास न जाऊँ!" एलबर्ट ने कहा।

"क्यों? तुम्हें याद नहीं जब माँ के पाँव पर फोड़ा निकला था, तो इसी डॉक्टर ने ऑपरेशन किया था। प्राग के डॉक्टर भी कुछ नहीं कर सके थे।"

"तुम भला उसकी तरफ़दारी इतनी क्यों करती हो?"

"जानते हो, रोज़ी सबसे यह कहती फिरती है कि डॉक्टर ने माँ की हत्या कर दी।"

"सबसे कहाँ?" अलेन्का ने कहा, "सिर्फ घर में ही तो कहा था।"

"अरे···छोड़! रोज़ी सब-कुछ कर सकती है··· वह ज़रूर कोई मुसीबत खड़ी करेगी। पता नहीं, इससे फ़ायदा क्या निकलेगा? माँ बेचारी को अब इस सबसे कोई मदद नहीं मिलने वाली।"

मैं इस बीच माँ का मृत्यु-सर्टिफिकेट देखने लगा था। कमरे में बहुत गर्मी थी···· सॉसिजों के लिए पानी उबाला जा रहा था। दरवाज़े के पीछे काज़ान के रिरियाने का स्वर सुनायी दे जाता था। वे सहसा चुप हो गये थे, मानो काले फ्रेम वाले मृत्यु-सर्टिफिकेट को पढ़ते ही—जिस पर माँ का नाम अंकित था। क्रिया-कर्म की शोक-घड़ी आ पहुँची हो। यों भी यह सर्टिफिकेट उसका एक अंतरंग भाग था। माँ स्वयं दूसरों के मृत्यु-सर्टिफिकेट फेंकने के बजाय बड़े यत्न से अपने कपड़ों की अलमारी में जमा रखती थीं।

"क्या मैंने ठीक लिखा है ?" एलबर्ट ने पूछा, "इसे लिखते हुए तीन घण्टे तक मैं रोता रहा··· लिख-लिखकर काट देता था।"

एलबर्ट की आँखें दुबारा भीग चलीं।

"तुमने बहुत खूबसूरत लिखा है।" ब्लास्ता ने कहा, मानो पहले से ही वह किसी मीन-मेख की संभावना को हटा देना चाहती हो। उसकी आँखें भी डबडबा आयी थीं··· शायद अपने ही ढंग से वह भी माँ को चाहती थी, शायद इसलिए भी कि उसने एलबर्ट को रोते देख लिया था। फिर वह अपनी माँ के बारे में बात करने लगी जो गुर्दे की बीमारी से पीड़ित थीं··· और अब उसके आँसू मरे हुए व्यक्ति के लिए न होकर ऐसे व्यक्ति के लिए बहने लगे थे, जो कभी मर सकता है। अपनी माँ के प्रति ब्लास्ता के दिल में जो आशंका थी, उसे आज मैं अच्छी तरह समझ सकता हूँ, हालाँकि उनकी मृत्यु से मुझे कोई बड़ा कष्ट होगा, ऐसा मैं नहीं कह सकता। किन्तु उस क्षण उसे किसी और के लिए आँसू बहाते देखना मुझे काफी असंगत लगा।

"सबको खबर पहुँचा दी ?" मैंने बीच में उसे टोकते हुए कहा।

"हाँ···आज दुपहर को ही। यह नामों की सूची है··· अगर कोई छूट गया हो, तो बताओ।"

मैं एक के बाद एक नाम पढ़ने लगा। हर नाम के आगे एलबर्ट के सिद्धहस्त 'क्लर्कीय' हाथों से सही का निशान लगा था। सब लोग परिचित थे··· किसी पुराने नाटक के जाने-पहचाने पात्रों की तरह, जिसमें कभी मैंने भी अपना पार्ट खेला था··· और तब एक दिन आया था जब शतरंज का खेल अचानक मुझे एक नये थियेटर में ले गया था। मुझे सहसा आभास हुआ कि आजकल मैं जिन लोगों से परिचित हूँ, उनमें से कोई भी माँ को नहीं जानता।

"क्या मार्था को खबर नहीं भेजोगे ?" ब्लास्ता ने पूछा।

मैंने कंधे सिकोड़ लिये।

"मुझे यह भी नहीं मालूम, वह कहाँ रहती है।"

"मास्टर नूरी ने उसे प्राग में देखा था।" एलबर्ट ने कोमल स्वर में कहा, "वह स्लावोनिक रेस्तराँ में खाना खाने गया था··· व्लास्ता ने उसे देख कर भी न देखने का बहाना किया।"

"यह भी तो हो सकता है कि उसने सचमुच ही नूरी मास्टर को नहीं देखा।" व्लास्ता ने जल्दी से कहा।

"ममी, इन फूलों को स्टोव से उठाकर किसी दूसरी जगह रख दूँ, वरना ये मुन जायेंगे··· कैसे खूबसूरत गुलाब के फूल हैं !" अलेन्का ने कहा।

हम सबकी आँखें अलेन्का पर उठ आयीं। फूलदान में गुलाब की पच्चीस लाल कलियाँ थीं जिन्हें अलेन्का ने उठाकर सिरहाने पर रख दिया था। अब तक मैं यह बहाना कर रहा था कि जुजा के फूल मैं स्वयं खरीद-कर लाया हूँ··· जब कभी इन फूलों की चर्चा होती, मैं बुरी तरह काँप जाता मानो अनजाने में मैंने कोई जघन्य अपराध कर डाला है। जब तक व्लास्ता ने फूलों को टिशू के कागज से बाहर नहीं निकाला था, मुझे नहीं मालूम था कि जुजा ने गुलाब के फूल खरीदे हैं। अलेन्का उनकी ताजगी देखकर मंत्रमुग्ध-सी हो गयी थी··· व्लास्ता ने सुझाव दिया था कि इन फूलों को माँ के कफ़न पर रखना चाहिये क्योंकि वे सबसे खूबसूरत थे। "हमने यहाँ की दुकान से माला बनवाने का ऑर्डर दिया था, लेकिन तुम तो जानते ही हो, यहाँ की दुकानों में कुछ हरी-पीली पत्तियाँ और इक्के-दुक्के खरिसान्थियम फूलों के अलावा कुछ नहीं मिलता।" उनकी यह प्रशंसा केवल फूलों के प्रति ही नहीं थी, उस व्यक्ति के प्रति भी थी, जिसने उन्हें खरीदा था। एलबर्ट का अर्थपूर्ण संकेत मुझसे छिपा न रह सका जब फूलों के गुच्छे को देखकर उसने कृतज्ञ, चमकती हुई निगाहों से मुझे निहारा था, और मेरी कमीज की आस्तीन को धीरे-धीरे सहलाने

लगा था। मैं धीमे से कुछ बड़बड़ाया था··· उन्होंने समझा मैं विनय के कारण ही इतना झेंप रहा हूं। मेरे लिए समूची स्थिति इतनी असहनीय हो गयी कि एक बार तो मन में आया कि सारी बात उनसे खोलकर कह दूं। किन्तु अब पीछे मुड़ने का कोई रास्ता नहीं था। मैं चाहता तो इससे दस गुना ज्यादा फूल ला सकता था। किन्तु हमेशा की तरह मुझे दिखावे के डर ने घेर लिया था। डर जो हमेशा इस यातनामय अनुभूति से उत्पन्न होता था कि मैं कहीं-न-कहीं किसी को धोखा दे रहा हूँ, जिन्दगी-भर देता रहा हूँ··· और अब इसी डर के कारण मैं एक ऐसी हास्यास्पद और बेहूदा स्थिति में पड़ गया था, जब सचमुच ही मैं ऐसे लोगों को धोखा दे रहा था, जिन्हें मैं प्यार करता हूं— अपनी मृत माँ को भी।

हम देर रात तक वहाँ बैठे रहे और माँ बार-बार हमारे बीच आती रहीं। हम धीमे शब्दों में उन्हें बुलाते रहे, और हमें लगता रहा मानो महज़ स्मृतियों से हम उनकी ज़िन्दगी को लम्बा कर सकते हैं।

'माँ भी खूब थीं'! एलबर्ट ने कहा, "जानते हो, मुझे उनकी कौन-सी चीज़ सबसे अच्छी लगती थी? उनकी खुशमिजाजी···वह ऐसी औरतों में से नहीं थी जो हमेशा हाय-हाय करती रहती हैं। मैंने कभी उन्हें हताश होते नहीं देखा। पहली लड़ाई का ज़माना था···तुम उन दिनों पैदा नहीं हुए थे···घर में अन्न का एक दाना नहीं। मैं और रोज़ी चौके में बैठे थे। अचानक माँ दौड़ती हुई आयीं, चाकू उठाया और फिर दहलीज की तरफ भाग गयीं। हम भी उनके पीछे भागते गए। वह चाकू हाथ में उठाये दरवाज़े के पीछे खड़ी थीं, मानो किसी पर हमला करने की ताक में खड़ी हों। वह बार-बार गली की तरफ झाँक लेती थीं। 'हिश' मुँह पर अँगुली रखकर उन्होंने हमसे कहा। सामने हमारा पड़ोसी अपनी गाड़ी से बैलों की खाल उतार रहा था···इसी एक खाल पर लम्बी पूँछ रखी थी। माँ उस समय तक प्रतीक्षा करती रहीं जब तक वह भीतर न चला गया। उसके भीतर जाते ही माँ बाहर की तरफ लपकीं और पलक मारते ही भीतर लौट आयीं। पड़ोसी को कुछ भी पता नहीं चला, गली में खड़ा-

खड़ा गालियां बकता रहा। मां देर तक हँसती रहीं। उस रोज़ उन्होंने हमारे लिए बहुत बढ़िया सूप बनाया था।"

"और दुकान में जो कुछ हुआ था, याद है?" व्लास्ता ने कहा, "कोई उनके हाथ से नहीं छूट पाता था। एलबर्ट, ज़रा बताओ तो! अरे भई, जब वह आदमी क्रीम खरीदने आया था···"

"मुझे अब याद नहीं।"

"वह आदमी बॉयर···एक दिन सीधा खेत से दुकान में चला आया, क्रीम खरीदने। मां ने झट भांप लिया "यहां गोबर की बदबू आ रही है। मिस्टर बॉयर,"आप भी अजीब हैं···बकरियों को छोड़कर सीधे मेरी दुकान में घुस आए!" बॉयर हँसने लगा···उसे आश्चर्य हुए बिना नहीं रह सका कि कैसे मां ने तुरन्त ताड़ लिया। बेचारे को दुकान से बाहर जाकर क्रीम खरीदनी पड़ी।

एलबर्ट मुझे मां की अन्तिम फोटो दिखाना चाहता था। जब वह दूसरे कमरे में एल्बम ढूंढ रहा था, मैंने अपना सूटकेस खोला और अलमारी में अपना सूट टांगने के लिए व्लास्ता से हेंगर मांगा। उसने सूट मेरे हाथों से ले लिया और स्वयं हेंगर पर उसे टांगने लगी।

"क्या यह नया खरीदा है?" उसने पूछा।

गहरे नीले रंग का यह सूट मैंने तीन महीने पहले खरीदा था किन्तु व्लास्ता से यह कहा कि वह दो वर्ष पुराना है।

"कपड़ा हो तो ऐसा हो!" व्लास्ता ने कहा। क्षण-भर में ही वह मां के शोक को भूल गयी···उसका स्वर जीवन्त हो उठा था और वह रोज़मर्रा की साधारण स्वाभाविक व्लास्ता बन गयी। "अलेन्का, ज़रा इधर आकर इस कपड़े को तो देख···ज़रा छू तो, कितना मुलायम है! इस तरह का माल हमारे देश में भला कहां दिखायी देता है!"

"अरे व्लास्ता, छोड़ो भी!" मैंने रूखे स्वर में कहा, "जानती हो,

यह कपड़ा मैंने कहाँ से खरीदा है ? प्राग के एक डिपार्टमेण्ट-स्टोर से··· तुम जितना चाहो खरीद सकती हो।"

यह जानकर कि मैंने कपड़ा विदेश में नहीं खरीदा, व्लास्ता ने तुरन्त मोर्चा बदल दिया।

"आह···डिपार्टमेण्ट-स्टोर से ! पाँच सौ क्राउन मीटर से तो क्या कम होगा ?"

"चार सौ का भी नहीं है।"

"हाँ···भई, तुम खरीद सकते हो···जानते हो, पाँच सौ क्राउन कमाने के लिए मुझे दिन-रात बैल की तरह जुतना पड़ता है।"

"तुम समझती हो, पश्चिम में यह कपड़ा सस्ता मिल सकता है ?"

"यहाँ से तो जरूर सस्ता होगा।"

मन में हल्का-सा पछतावा हुआ कि मैंने सूटकेस यूँ ही खोला। जब कभी व्लास्ता को यह पता चल जाता है कि मैं अपने साथ कोई 'स्पेशल-चीज़' लाया हूँ, हमारी बातचीत का दौर अनिवार्यतः राजनीति की तरफ मुड़ जाता है। मुझे यह बात असहनीय लगती है। मैं मुँह सी कर बैठ जाता हूँ और किसी बात का उत्तर नहीं देता। यह शायद मेरा ओछापन हो, लेकिन सही बात यह है कि जब कभी मैं अपने शहर आता हूँ, मेरी कोशिश यही रहती है कि अपने साथ कोई ऐसी चीज़ न ले जाऊँ जो मैंने विदेश में खरीदी है। एक बार व्लास्ता से बहस करते हुए मैं कुछ गर्म हो गया और पश्चिमी बर्लिन की कड़ी आलोचना करने लगा··· तब व्लास्ता ने बहुत सहज स्वर में कहा था, "लेकिन मिरेक, तुम्हारे मुँह पर यह आलोचना शोभा नहीं देती··· वे जूते तुमने कहाँ से खरीदे थे ? पेरिस से··· क्यों, गलत कहती हूँ ! और तुम्हारी कमीज़ अर्जनटीन की है और फाउण्टेन-पेन इंगलैंड का··· अगर तुम पश्चिम के इतने ही खिलाफ हो, तो वहाँ जाकर ये चीज़ें क्यों खरीदते हो ? काश, मैं भी ऐसा कर सकती !

एक तरफ कम्यूनिस्ट बनने का बहाना करना, दूसरी तरफ बढ़िया साम्राज्यवादी जूतों को पहनकर चलना! अगर मेरे विचार वैसे ही होते, जैसे तुम्हारे हैं तो मैं इन यमदूत पश्चिमी देशों की चीजों पर थूकती भी नहीं!" हालांकि इस तर्क का उत्तर देना मुश्किल नहीं, ब्लास्ता की बात सुनकर मेरा मुंह लाल हो जाता। किन्तु ब्लास्ता के उपहास से कहीं अधिक मुझे इस बात पर तैश आता कि ऐसे मौकों पर एलबर्ट भी ही-ही करने लगता। वह ब्लास्ता का पक्ष लेने लगता। मैं एलबर्ट की ही तरह कम्यूनिस्ट हूँ और ब्लास्ता की तरह जाहोरी का बाशिन्दा··· लेकिन कहीं मैं उनसे भिन्न हूँ और यह चीज वे भी महसूस करते हैं। मेरे पास विदेशी चीजें हैं। मैं शतरंज खेलने के लिए एक देश से दूसरे देश घूमता हूँ और जब मैं वापस घर लौटता हूँ, अपने को अपने देश में अजनबी पाता हूँ। मुझे यह चीज काफी कड़वी लगती है। "अच्छा भाई मिरेक, अर्जेन्टाइन घूमकर आये हो··· कुछ बताओ उसके बारे में।" वे मुझसे पूछते हैं। मैं बात शुरू करता हूँ··· विनीत और नम्र भाव से, ताकि वे यह न समझें कि मैं डींगे हांक रहा हूँ, लेकिन इसके बावजूद··· कुछ हो जाता है। सहसा मुझे एलबर्ट की आंखों में अजीब-सी बेचैनी दिखायी देती है। मैं अपनी तरफ से काफी दिलचस्प बातें सुना रहा हूँ, किन्तु मेज के इर्द-गिर्द बैठे लोगों में दुविधा-सी फैल जाती है··· जितना ही मैं उनका ध्यान अपनी तरफ खींचना चाहता हूँ, उतना ही अधिक मैं महसूस करता हूँ कि वे चाहते हैं कि मैं चुप हो जाऊं··· लगता है कि जो कुछ मैं कह रहा हूँ, वे शायद कुछ भी नहीं समझते। मैं घबराकर चुप हो जाता हूँ। फिर ब्लास्ता कहती है, "लाडा बोहम पूर्वी जर्मनी में छुट्टी बिताकर आया है··· बताता था···" उन सबके चेहरे खिल उठते हैं और वे लाडा बोहम के संस्मरण सुनने के लिए उत्सुक हो जाते हैं। वे उसके अनुभवों की तुलना मेरे अनुभवों से करते हैं क्योंकि लाडा उनका अपना आदमी है, उन्हीं की आंखों से दुनिया को देखता है जबकि मैं··· मैं इस दौरान बहुत बदल चुका हूँ। जब दुबारा जाहोरी की बात छिड़ती है, तो वे तसल्ली की सांस लेते हैं··· अनायास ही वे ऐसे विषयों और सन्दर्भों की चर्चा करने लगते

हैं जिनके बारे में मुझे कुछ नहीं मालूम। मुझे लगता है, वे जान-बूझकर ऐसा करते हैं, ताकि मुझे वे कहीं दूर··· ब्रिटेन या अर्जन्टाइन धकेल सकें··· सिर्फ यह जतलाने के लिए कि उनके लिए जाहोरी ही काफी है। मुझे पीड़ा होती है। मैं उन्हें उतनी ही अच्छी तरह समझ सकता हूँ, जितना वे मुझे गलत समझते हैं।

१३

उन्होंने ऊपर बरसाती में मेरा बिस्तर लगाया था। गर्मियों में अलेन्का यहीं सोती है··· सर्दियों में नीचे चली आती है ताकि ईंधन की किफायत हो सके। कमरे की अँगीठी धू-धू जल रही थी। कुछ देर बाद एलबर्ट ऊपर आया और अँगीठी में कुछ और कोयले झोंक दिये।

"सोने से पहले कुछ और कोयले डाल देना···" उसने कहा, "इस वक्त तो कमरा गर्म है, लेकिन इन अँगीठियों का भरोसा नहीं··· सुबह तक बिल्कुल ठंडी हो जायेंगी।"

"नहीं··· मुझे सर्दी नहीं लगेगी।"

"सुबह तुम्हारे लिए गुसलखाने का पानी भी गर्म करवा दिया है। कुछ और तकियों की जरूरत हो तो अभी नीचे से ले आता हूँ।"

"नहीं··· नहीं··· मेरे लिए एक काफी है।"

मेरे प्रति उसकी चिन्ता देखकर मैं अभिभूत-सा हो आया था। उसने एक लम्बी साँस खींचकर सिगरेट सुलगा ली और फिर मुझे कपड़े बदलता हुआ देखने लगा।

"देखने में तुम तन्दुरुस्त लगते हो।" उसने कहा··· मैं कमीज़ उतार रहा था। "अब तुम्हारे दिल की बीमारी कैसी है? डॉक्टर को दिखाते रहते हो?"

"मैं चंगा-भला हूँ··· लेकिन तुम ठीक नहीं दिखायी देते।"

"मैं कभी ठीक दिखायी दिया हूँ!"

मैं उसके सामने बिस्तर पर बैठ गया। उसके गमगीन, चिन्ताग्रस्त चेहरे को देखकर लगता था मानो वह मुझसे कुछ कहना चाहता है··· मैं उसकी भाव-मुद्रा देखते ही पहचान गया था और अब उसके बोलने की प्रतीक्षा कर रहा था। मैं मन-ही-मन कुछ डर भी रहा था क्योंकि मुझे मालूम था कि खुली-साफ बात का मुझे भी खुले-साफ ढंग से जवाब देना होगा। किन्तु देर तक उसने कुछ नहीं कहा। उसने मुझसे पूछा कि कितनी सिगरेटें मैं दिन में पी लेता हूँ··· फिर उसने मुझे आश्वासन दिया कि अँगीठी की चिमनी बहुत अच्छी है और कमरे में धुआँ फैलेगा नहीं। तब सहसा उसने उदास आँखों से मेरी ओर देखा और धीमे स्वर में कहा "कैसी अजीब बात है··· कभी-कभी इन्सान दया-धर्म सब भूल जाता है।"

"क्यों?"

उसने अपना सिर नीचे झुका लिया··· बोलने में उसे काफी परेशानी महसूस हो रही थी मानो उसे डर हो कि मैं उसके बारे में कोई निर्णय लेने जा रहा हूँ।

"क्या एक क्षण के लिए भी मैं सोच सकता था कि माँ इस तरह चल बसेंगी?" "उन्हें कभी कोई बीमारी नहीं हुई··· ज्यादा-से-ज्यादा फ्लू का

बुखार और उसमें भी वह चलती-फिरती रहती थीं। रोजी के हाथ मुझे उनका सन्देश मिला कि वह मुझे देखना चाहती हैं। अब भी मैं उनकी वह जीती-जागती तस्वीर नहीं भूल पाता जब उन्होंने बिस्तर पर लेटे हुए मेरी ओर देखा था। 'तुम अभी से जा रहे हो!' मैं इतना बेवकूफ कि उस समय कुछ भी नहीं पहचान सका। गाँव से मेरा दोस्त कुवाश्ता आया हुआ था और मैं बहुत जल्दी में था··· मैंने सोचा, सिर्फ ठंड लग गयी है, और कुछ नहीं। आज जब मैं सोचता हूँ कि उसके बाद भी वह तीन दिन जिन्दा रहीं और मैं एक बार भी उन्हें देखने नहीं जा सका···"

मुझमें इतना साहस नहीं था कि मैं एलबर्ट से माँ के उस पत्र के बारे में कह सकूँ जो उन्होंने मुझे पतझर में भेजा था और जिसने मुझे इतना भयभीत कर डाला था। उसकी याद आते ही मेरे भीतर सब-कुछ रुँध-सा गया। एलबर्ट सिसक रहा था।

"तुम यूँ ही अपने को दोष देते हो।" मैंने अनिश्चित स्वर में कहा।

"मुझे मालूम है··· लेकिन जब सोचता हूँ तो काफी पछतावा-सा होता है।"

"कभी उन्होंने मेरे बारे में पूछा था ?"

"आखिरी बार जब मिला था, तब कुछ नहीं कहा। यों क्रिसमस की छुट्टियों में तुम्हारे आने की बाट जोहा करती थीं। कहा करती थीं अब मैं आराम से बैठा करूँगी··· क्रिसमस में मिरेक मुझे एक आराम-कुर्सी देने वाला है।"

मुझे कुछ भी कहने का साहस नहीं हुआ। एलबर्ट कभी अनुमान नहीं कर पायेगा कि उसका एक-एक शब्द किस तरह मुझे शर्म के गड़हे में डुबो रहा था।

"जानते हो, तुम्हारी कौन-सी बात उन्हें सबसे ज्यादा अखरती थी ?"

"कौन-सी बात ?"

मेरा दिल जोर-जोर से धड़कने लगा मानो एलबर्ट का अगला वाक्य यह होगा— "तुम हमेशा दुकानों की खिड़कियों में झाँकते रहते थे और तुम्हें हर आरामकुर्सी महँगी जान पड़ती थी।" किन्तु एलबर्ट ने यह कुछ नहीं कहा··· वह धीमे से मुस्कराया—"माँ को यह बात बहुत बुरी लगती थी कि पिछले दिनों तुम बराबर हारते जा रहे हो··· वह हमेशा अखबारों में तुम्हारे मैचों के समाचार पढ़ा करती थीं। हमेशा खीज-कर कहा करतीं थी, इस लड़के को न जाने क्या हो गया है ? इस बार फिर नवें नम्बर पर आया।"

"ठीक ही कहा करती थीं। मैं खुद नहीं जानता, इधर मुझे क्या होता जा रहा है।"

"हमेशा ही कोई नहीं जीत सकता।" एलबर्ट ने कहा। उसने एक नयी सिगरेट सुलगा ली और फिर उठ खड़ा हुआ मानो बाहर जा रहा हो। वह किसी खयाल में डूबा था मानो कोई चीज तय न कर पा रहा हो।

"अब सब-कुछ बदल जायेगा।" उसने अँगीठी की तरफ़ कदम बढ़ाते हुए कहा। टूटते हुए कोयलों के पीछे उसके शब्द भी अटक-अटक कर सुनायी देते थे—"माँ ने हम सबको एक साथ बाँध रखा था। उनके रहते हम एक परिवार में थे···अब सब-कुछ छिन्न-भिन्न हो जायेगा। तुम अब यहाँ कभी नहीं आओगे।"

"क्यों··· क्यों नहीं आऊँगा ?"

"देख लेना। अलेन्का भी यही कहती थी। उसका तुमसे बहुत लगाव है···कहने लगी, 'बाबू, अब मिरेक चाचा यहाँ कभी नहीं आयेंगे।'

ज़रा सोचो, हम साल में एक-दूसरे को कितनी बार खत लिखते हैं··· एक बार, बहुत हुआ, दो बार। तुम्हारी आँखों में मैं गँवई-गँवार से ज्यादा कुछ नहीं···लेकिन अगर तुम बीच-बीच में अपने बारे में, अपनी योजनाओं के बारे में, अपनी किताब के बारे में ख़त लिखते रहा करो, तो मुझे कितनी ख़ुशी होगी, इसकी कल्पना नहीं कर सकते। तुम्हारे बारे में मुझे हमेशा फिक्र लगी रहती है···"

"ऐसी बात नहीं··· मैं यही सोच कर रुक जाता था कि इन चीज़ों में तुम्हें दिलचस्पी नहीं है।"

"मिरेक-जानते हो··· कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि तुम्हें हम लोगों पर कुछ शर्म-सी आती है।"

"क्या फ़िज़ूल की बात करते हो!"

मुँह बिचकाकर मैं चुपचाप बैठा रहा। एलबर्ट ने और कुछ नहीं कहा। उसने फ़िज़ूल की बात नहीं कही थी···मैं जानता था, उसकी बात में सच है। जब वह अपनी पत्नी के साथ प्राग आता है, मैं उनसे अपने फ़्लैट में ही मिलना पसन्द करता हूँ। खाने-पीने के लिए भी मैं उन्हें किसी ऐसे रेस्तराँ में ले जाता हूँ, जहाँ मैं स्वयं अकेला कभी जाना पसन्द नहीं करूँगा। प्राग में मुझे उनकी हर चीज़ आँखों में खटकती है···व्लास्ता के भयानक स्कार्फ जो वह अपनी जर्सी में खोंसे रहती है, मीनू पढ़ते हुए एलबर्ट के टेढ़े-सीधे रिमार्क, पड़ोसी मेज़ों पर बैठे हुए लोगों के बारे में उसकी फब्तियाँ। आस-पास के अजनबी वातावरण से शायद वह कुछ इतना घबरा जाता है कि उसे छिपाने के लिए वह जान-बूझकर अपने गँवारूपन को बढ़ा-चढ़ाकर प्रदर्शित करने लगता है। मैं बार-बार अपनी घड़ी और दरवाज़े की ओर देखने लगता हूँ,···मन में हमेशा यह भय बना रहता है कि कहीं कोई जाना-पहचाना चेहरा दिखायी न दे जाए। मैं झेंपू नहीं हूँ···मेरा केस कहीं अधिक गम्भीर है। जब मैं अकेला भी किसी रेस्तराँ में घुसता हूँ, खाली कुर्सी की ओर बढ़ते हुए मुझे लगता है जैसे मैं नींद

में चल रहा हूँ· · ·दूसरे लोगों की निगाहों के सामने मैं बुरी तरह घबरा उठता हूँ, लगता है जैसे मैं सबके सामने नंगा कर दिया गया हूँ। जब मेज़ों के बीच रास्ता बनाते हुए मेरे पीछे एलबर्ट और ब्लास्ता आते हैं, तब मेरी यह घबराहट सौ गुना बढ़ जाती है। एलबर्ट के सामने मैं यह बात कभी तस्लीम नहीं कर सकूँगा। वह अवश्य ही सोचेगा कि बराबर शतरंज खेलने के कारण मेरे दिमाग़ के पुर्ज़े ढीले पड़ गए हैं।

एलबर्ट खिड़की के सामने खड़ा था· · ·उसे शायद अपने पर संकोच हो रहा था कि उसने अनावश्यक रूप से बात को तूल दे दिया· · ·शायद इसलिए भी कि मैंने बातचीत को इतने अटपटे ढंग से बीच में ही छोड़ दिया था। अपनी दुविधा को दबाने के लिए वह खिड़की का फ्रेम और चिटखनी जाँचने लगा· · ·यह देखने के लिए कि वह ठीक से बन्द है या नहीं।

"लकड़ी बिल्कुल सड़ गयी है।" उसने कहा, फिर मेरी ओर मुड़कर देखा, "इस बार गर्मी की छुट्टियाँ गुज़ारने यहाँ आ जाओ। मैं तुम्हारे लिए यहाँ एक बढ़िया टेबुल लगा दूँगा, जिस पर तुम लिख सको। खिड़की के सामने ही चेरी का पेड़ है· · ·हाथ बढ़ाकर तुम फलों को तोड़ सकते हो। इससे ज़्यादा और क्या चाहते हो?"

"ज़रूर आऊँगा· · ·और जाऊँगा भी कहाँ? माँ के पास जाना तो अब सम्भव नहीं होगा· · ·"

"अच्छा अब सो जाओ· · ·आराम तो ज़्यादा नहीं मिलेगा, फिर भी। अँगीठी में कोयले ज़रूर डाल देना।"

जाने से पहले उसने धीरे से मेरा कन्धा दबाया था। लकड़ी की सीढ़ियों पर मैं उसकी कदमों की चाप सुनता रहा। वे अच्छे, भरोसेदार कदम थे, वह मेरा अच्छा, भरोसेदार भाई था। उसकी आज्ञानुसार मैंने अँगीठी में कोयले डाल दिए और फिर रज़ाई तानकर लेट गया। मैं काफ़ी थक गया था, लेकिन सोने की कोई इच्छा नहीं थी। मैंने सिगरेट सुलगा ली

और अँधेरे में अँगीठी की रक्तिम आभा और सिगरेट का जलता सिरा देखने लगा, जो पके हुए लाल बेर-सा दिखाई देता था। कमरा जरूरत से ज्यादा गर्म था और उसमें चूहों और धूल की गन्ध आ रही थी। मैंने आँखें मूँद लीं। नीचे हमने जो अतीत के बारे में बातें की थीं, उनके टुकड़े अब भी मेरे मस्तिष्क में फड़फड़ा रहे थे और नींद उड़ गई थी। कहीं कोई भीतर स्मृतियों के कोनों को कुरेदे जा रहा था, जिनमें से माँ, बाबू और बचपन की चिप्पियाँ उड़-उड़कर बाहर चली आती थीं। उन्हें किसी एक सिलसिले में लगाना असम्भव था और वे आपस में गडमड होकर एक दुःस्वप्न में बदल गयी थीं। दो सियामी जानवर अपने खामोश पंजों पर माँ की रसोई में चक्कर लगा रहे थे। मैं उन्हें भगाने की कोशिश करता, किन्तु वे बार-बार लौट आते। मैंने आँखें खोल दीं। अँगीठी बिल्कुल लाल हो गयी थी और एक स्याह-सी गहरायी उसके नीचे से ऊपर फैल रही थी। डरकर मैंने आँखें मूँद लीं और उस पिछवाड़े वाले कमरे को भूलने की चेष्टा करने लगा। मैं सो रहा था और नहीं सो रहा था। सहसा बाहर उजाला फैलने लगा।

१४

रोशनी की तीखी चुभन आँखें बरदाश्त न कर सकीं और मैंने दोबारा जल्दी से पलकें मूँद लीं। सफेद रोशनी··· खड़िया-सी सफेद ढेर-सी रोशनी। कुहनी के सहारे मैं तनिक ऊपर उठा। चेरी के पेड़ की लाल टहनियों पर ताजी बर्फ चिपकी हुई थी। बूँद-बूँद करके चेतना लौटने लगी··· उन परिन्दों की तरह जो नींद के दौरान उड़ गये थे और जिन्हें अब मैं एक-एक करके दोबारा पकड़ने लगा था। मैं ज़ाहोरी में हूँ, अलेन्का के कमरे में, पिछली शाम एलबर्ट मुझे यहाँ लाया था, माँ मर चुकी है, इसीलिए मैं यहाँ हूँ, अलेन्का के कमरे में।

मैं ठण्ड से काँप रहा था···मेरा कंधा मानो बर्फ़ में जम गया था और मेरा ध्यान बार-बार उस ओर चला जाता था। रजाई इतनी ठंडी हो गयी थी कि लगता था मानो किसी ने पानी में भीगी चादर मेरे ऊपर डाल दी हो।

टेबुल-लैम्प की महीन रोशनी में सब-कुछ बहुत सुखद और आराम-देह-सा लगता है···किन्तु दिन के प्रकाश में वह कमरा भयावह जान पड़ता था। मेरा ध्यान बरबस उस टेबुल की ओर गया जिस पर हाथ से कढ़ा हुआ एक नीला रेशमी मेज़पोश बिछा था। मेज़ की छोटी-छोटी भूरी टाँगों पर लकड़ी का काम किया गया था जिसे देखकर फ़ैशनेबुल छड़ियों की याद हो आती थी। सामने की दीवार से सटे पलंग से बिस्तर हटा दिया गया था··· शायद रोज़ी के लिए। वह कल बीमार पड़ गयी थी और उसे इन्जेक्शन दिया गया था··· तब से वह बिस्तर पर ही लेटी थी। दूसरे पलंग पर सिवाय एक चटाई के कुछ भी न था··· शायद इसीलिए वह कमरा इतना रूखा और पराया-सा दिखायी देता था।

उस पलंग के ऊपर जो तस्वीर टँगी है, वह मुझे बहुत प्रिय है। दरअसल यह तस्वीर उन जर्मन सज्जन की है, जो पहले इस मकान के मालिक थे। यों काम किसी अमेच्योर पेण्टर का है, फिर भी ज़ाहोरी का दृश्य बखूबी से उतारा गया है···चित्र के नीचे १६१० का वर्ष और किसी चित्रकार हैन्स आर. वाट्ज़लाविक के हस्ताक्षर अंकित हैं। चित्र के अग्रिम भाग में एक छोटा-सा चीड़ का वृक्ष है, जिसके नीचे एक यात्री हैट पहने खड़ा है। उसके पैरों के नीचे से एक हरा-भरा चरागाह शहर की तरफ़ फैलता गया है, जहाँ गिरजे की बुर्ज़ियों के इर्द-गिर्द मकानों के झुण्ड कुछ उसी तरह जमा हो गये हैं, जैसे मुर्ग़ी के इर्द-गिर्द चूज़े इकट्ठा हो जाते हैं।

दृश्य की स्निग्ध आत्मीयता बढ़ाने के लिए चित्रकार ने ज़ाहोरी के ओर-छोर इन्द्रधनुष की वक्र रेखा भी खींच दी है।

१६१०··· उस समय माँ की आयु बीस वर्ष रही होगी। न जाने जून के उस दिन—जो इस चित्र पर अंकित है—माँ क्या कर रही होंगी? गिरजे की दायीं तरफ़ धुएँ की जो रेखा उठ रही है शायद हमारे घर की चिमनी का ही तो धुआँ नहीं है··· उस आग का धुआँ, जिसे माँ ने अपने हाथों से जलाया होगा? यह सोचना भी असंभव लगता है कि शायद उसी दिन—

जब यह चित्र बनाया गया होगा— माँ उस रास्ते से गुज़री होंगी, जिसके दोनों ओर सेवों से लदे पेड़ खड़े हैं। उस दिन बहुत से लोग उस रास्ते से गुज़रे होंगे। किन्तु चित्रकार ने अपनी तस्वीर में वह रास्ता सूना और वीरान ही बनाया है।

नीचे काज़ान भौंक रहा था। आठ बजकर छत्तीस मिनट। पाँवों के नीचे कमरे का नंगा फर्श संगमरमर के पत्थर-सा ठण्डा लग रहा था। मुझे अपने स्लीपर नहीं मिल पा रहे थे··· शायद वे मेरे सूटकेट में थे। जब मैं अपना सूट एलवर्ट की अलमारी में टाँग रहा था, तब उन्हें बाहर निकालना भूल गया था। मुझे लगा कि मैं धीरे-धीरे वे सब गुण खोता जा रहा हूँ जो ज़ाहोरी के असली बाशिन्दे में होने चाहिये। एलवर्ट होता तो सिर्फ़ गाली निकालकर कहता, 'वला की सर्दी है।' लेकिन मैं ज़ाहोरी की असुविधाओं को बरदाश्त करने में धीरे-धीरे असमर्थ होता जा रहा हूँ। मुझे अपने पर ही झुँझलाहट होने लगी··· साहब बहादुर को हर जगह आराम चाहिये।

ज्योंही मैं जूते पहनकर तैयार हुआ, रोज़ी कमरे में आती दिखायी दी।

मैंने सोचा था, कल की बेहोशी के कारण रोज़ी काफ़ी कमज़ोर दिखाई देगी, किन्तु सीढ़ियों पर उसकी पदचाप सुनकर मुझे उसकी पुरानी उद्विग्न बेचैनी-भरी शक्ति याद हो आयी। उसे देखकर यह कल्पना भी दूभर लगती थी कि सिर्फ़ पन्द्रह घण्टे पहले उसे बेहोशी का दौरा आया था। "मिरेक, कैसे हो?" कमरे का फर्श पार करके उसने मेरी तरफ हाथ बढ़ा दिया। वह कहीं बाहर घूमकर आयी थी और उसने गर्म अस्तर वाली नीली बरसाती पहन रखी थी। मैंने उसे बाँहों में भर लिया··· उसका चेहरा वर्फ़-सा ठंडा लगा। लगता था मानो उसके सलेटी रंग के बाल, जो उसने पीछे की तरफ़ बाँध रखे थे, अपने साथ बाहर की ठंडी हवा भीतर ले आये हैं।

"अब कैसी हो?" मैंने पूछा।

उसने झटके से सिर हिलाया। मैं उसकी इस गर्वीली मुद्रा को अच्छी तरह पहचानता हूँ··· एक अधीर-सा संकल्प उसमें भरा रहता है।

"छोड़ो···उसकी बात मत करो," उसने कहा, "अपनी हालत पर मैं खुद शर्मिन्दा हूँ। मुझे नहीं मालूम था कि इस तरह बेहोश हो जाऊँगी।"

उसने होंठ सिकोड़ लिये। मुझसे छिपा न रह सका कि कितनी बुरी तरह वह अपने आँसुओं को रोकने की कोशिश कर रही है। लगता था, वह यह फैसला करके आयी है कि अब किसी के सामने नहीं रोयेगी। उसकी आँखें लाल थीं··· अवश्य ही कुछ देर पहले वह रोयी होगी। शायद शहर से वापस लौटते हुए··· या पिछली रात की अकेली घड़ियों में।

"कल मैं तुमसे नहीं मिल सका··· उन्होंने मना कर दिया था।" उसने सख्ती से सिर हिलाया।

"वैसे भी मैं सो नहीं रही थी। मुझे तुम्हारे आने का पता चल गया था। तुम लोगों की बातचीत भी सुन रही थी।"

"तुमने मुझे बुला क्यों नहीं लिया?"

"पता नहीं। किसी को देखने की इच्छा नहीं थी। मुझे कुछ वैसा ही महसूस हो रहा था जैसा··· पिछले वक्तों की तरह। लेकिन मैं जल्दी ही सँभल जाऊँगी। मुझे इसका दुःख है कि तुम लोगों की परेशानियों के बीच मैंने अलग से बखेड़ा खड़ा कर दिया।"

वह उस कुर्सी के सिरे पर बैठ गयी, जिस पर मेरे कपड़े रखे थे। अपनी कुहनियाँ मेज पर थमा दीं।

"मैं अभी तक उन्हें देखकर आ रही हूँ।" कुछ देर बाद उसने कहा, "बिल्लियों को खाना देने गयी थी··· जानते हो, वहाँ उस कमरे में लेटे हुए वे बहुत छोटी-सी लगती हैं।"

पीड़ा उफन आयी और उसने जल्दी से अपनी आँखें हथेलियों से ढक लीं। मैं उसके पास चला आया और धीरे-धीरे उसके सफ़ेद बालों को सहलाने लगा··· इन्हीं बालों के कारण शहर में उसका नाम 'चाँदी' पड़ गया था। वे चाँदी की तरह सफ़ेद थे।

उसने मेरा हाथ पकड़ लिया, "वह अद्‌भुत थीं···नहीं ?"

"सचमुच !" मैंने कहा।

"हमें चाहिये कि उन्हें कभी न भूलें।"

"तुम समझती हो, कभी भूल पायेंगे ?"

उसकी आँखें सहसा चमकने लगीं।

"मुझे व्लास्ता पर बेहद गुस्सा है···" उसने धीमे स्वर में कहा, "ज़रा देखो··· ऐसी घड़ी में भी वह छोटी-छोटी चीज़ें दिमाग से बाहर नहीं निकाल सकती। कहने लगी, हमें माँ के इयरिंग उतार लेने चाहिये··· कब्र में उन्हें फेंकने से क्या फ़ायदा ! मैंने भी सोचा, जो मरज़ी आये करें। एलबर्ट उसके डर के मारे चूँ भी नहीं करता। वह भी उसकी हाँ-में-हाँ मिलाता हुआ कहने लगा कि हमें ये इयरिंग अलेन्का के लिए रखने चाहिये··· माँ की याद्दाश्त में।"

"तुम बेकार में गुस्सा करती हो··· अब कोई फ़र्क पड़ता है ? माँ के लिए अब कोई फर्क पड़ता है ?"

"तुम सच कहते हो··· मैं बेवकूफ़ हूँ। मैं माँ से इतनी बँधी थी कि कुछ भी नहीं भुला पाती।"

मैं सर्दी में सिकुड़ने लगा था···बिस्तर पर बैठकर मैंने अपने कंधे रजाई में लपेट लिये। रोज़ी सिगरेट पीना चाहती थी। मेरे कोट की जेब में सिगरेटों का पैकेट टटोलते हुए उसके हाथों में नोटों का बण्डल पड़ गया जो आधा मुड़ा हुआ एक गुच्छे में लटका था। वह नये किस्म का गुच्छा था जो मैंने डुसलडोर्फ में ख़रीदा था।

"क्या यह नया मॉडल है ?" उसने खोए से स्वर में पूछा।

"यूं ही···इससे सुविधा रहती है।"

अपराध और खीज की भावना ने मुझे दोबारा अपने में जकड़ लिया। यह भावना मुझे हमेशा उस क्षण पकड़ लेती है, जब कभी मैं पाता हूं कि मुझमें और जाहोरी के सामान्य जीवन-ढर्रे में कोई समानता नहीं। मैं उसके जर्द और पीले चेहरे को देखने लगा जो नींद के अभाव में और भी क्लान्त दिखायी दे रहा था। इस वर्ष वह पचास पूरा कर लेगी, किन्तु उसका चेहरा पहले की ही तरह सुन्दर दिखायी देता है। सुन्दर और अभिमानी। भूरी आंखों के ऊपर—जो मां की आंखों की ही तरह भूरी हैं—दो तिरछी भौंहें पाम की टहनियों के समान फैली हैं और वही तिरछन होंठों पर भी है। एक निगाह से देखो, तो समूचे चेहरे का प्रभाव बहुत कोमल और स्निग्ध जान पड़ता है। अभिमान की मुद्रा यदि दिखाई देती है तो उसके सिर से, जो कन्धों से तनिक पीछे मुड़ा हुआ है···मानो अपने और दूसरों के बीच फासला कायम रखना चाहता है, और उसकी कुछ उठी हुई नाक से भी, जो टैंक रोकने के व्यवधान की तरह आगे की ओर झुकी है।

यों भी यह महज चेहरे की भंगिमा नहीं है। रोजी हमेशा से ही बहुत घमण्डी और अभिमानी रही है। किसी के सामने सिर झुकाना उसे हमेशा बुरा लगता रहा है। कुछ लोग अपने बारे में बहुत ऊंची राय रखते हैं··· चाहे कारण कुछ न हो। कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जो अपने बारे में ऊंची राय रखते हैं—और यद्यपि कारण यहां भी कुछ नहीं होता, फिर भी वे इस 'ऊंची राय' को अपने पर जबरदस्ती एक जिम्मेवारी की तरह ओढ़े रखते हैं। रोजी ऐसे ही लोगों में है।

उसने पूरी सिगरेट पिये बिना ही अधबीच में बुझा दी।

"मां को देखने कब जाओगे ?"

"पता नहीं," मैंने कहा, "शायद अभी··· सुबह के वक्त।"

"चाबी ले लो।" उसने अपना बैग खोला।

"क्यों··· तुम मेरे साथ नहीं आओगी ?"

"इस समय नहीं। मेरी छुट्टी है, लेकिन अगर एक बार फ़ैक्टरी में जाकर शक्ल नहीं दिखा आती तो सोचेक मेरी हाजरियों में ऐसी गड़बड़ कर देगा कि उसे सुधारने में बरसों लग जायेंगे।"

"मैं वहाँ अकेला नहीं जाना चाहता··· पता नहीं क्यों, लेकिन अकेले जाना असंभव है। क्या दूसरे सब लोग चले गये ?"

"हाँ···सिर्फ़ अलेन्का तुम्हारा नाश्ता लेकर बैठी है।"

"क्या तुम दोपहर को भोजन के बाद मेरे साथ चल सकोगी ?"

"अच्छा··· खाने के बाद चलेंगे। मुझे फूलों की दुकान में भी जाना है··· पता नहीं उन्होंने कैसी मालाएँ बनायी हैं। बाद में हम सब रेस्तराँ में ही खाना खायेंगे।"

"क्या तुम··· सुनो, फूलों का एक हार मैं भी माँ के लिए···"

"लेकिन क्यों ? इसकी ज़रूरत नहीं है। आखिर तुम इतने सुन्दर गुलाब के फूल लाए हो··· क्या वे काफ़ी नहीं ?"

"मेरी तरफ़ से एक माला नहीं बनवा सकतीं ? या··· कम-से-कम फूलों का एक दूसरा गुच्छा ? गुलाब के फूल शवयात्रा की घड़ी तक मुरझा जायेंगे··· तुमने देखा नहीं, वे अभी से सूखने लगे हैं।"

"नहीं··· मुरझायेंगे नहीं। वैसे भी सारे परिवार की ओर से हमने एक बड़ी माला बनवायी है··· तुम अपनी तरफ़ से एलबर्ट को कुछ दे देना।"

"बेशक।"

वह माँ के मकान की चाभी से खेल रही थी। हाथ की बनी हुई वह सुघड़, मजबूत चाभी थी··· चाभी के छल्ले पर पीतल मढ़ा था। वह धीरे-धीरे अपना सिर हिलाती जा रही थी··· बिल्कुल माँ की तरह। एक क्षण के लिए रोज़ी और माँ की समानता देखकर मैं हक्का-बक्का-सा रह गया। चाभी को देखते हुए रोज़ी ग़मग़ीन अन्दाज़ में मुस्कराने लगी।

उसने उसे अपनी हथेली से ढक लिया।

"यह अजीब है··· जब कोई मर जाता है, मकान की हर चीज़ बदल जाती है। वे सारा सामान ले जाते हैं और यह एक दूसरी शव-यात्रा होती हैं। फिर नया किरायेदार आता है जिसके हाथों मकान की चाभी सुपुर्द कर दी जाती है। वह सारे मकान को अच्छी तरह धुलवाता है, सफ़ेदी करवाता है ··· पुराने का कुछ भी शेष नहीं रहता। एक चिह्न भी नहीं। शायद यह ठीक भी है, ऐसा ही होना चाहिये।"

"क्या तुम सोचती हो कि वे अब तुम्हें उस मकान में नहीं रहने देंगे ?"

"मैं खुद वहाँ रहना पसन्द नहीं करूँगी।"

"तुम यहाँ एलबर्ट के साथ रह सकती हो··· कम-से-कम बिल्कुल अकेली तो नहीं रहोगी ?"

उसने एक दूसरी सिगरेट उठायी। हल्की-सी बेचैनी उसके चेहरे पर सिमट आयी थी।

"नहीं",उसने सिगरेट का पहला कश लिया, "यह ठीक नहीं होगा। मुझमें और व्लास्ता में उसी समय पट सकती है, जब हम एक-दूसरे से दूर-दूर रहें।"

"व्लास्ता के प्रति तुम्हारा दृष्टिकोण मुझे ठीक नहीं जँचता।"

"तुम्हारा दृष्टिकोण मैं जानती हूँ… किन्तु शायद मेरे स्वभाव में उतनी खुशमिज़ाजी नहीं है, जितनी होनी चाहिये। यों भी उसे डर है कि कहीं मैं सचमुच उसके घर डेरा न डाल बैठूं।"

मैंने आगे कुछ नहीं कहा… उसे ज्यादा कुरेदना मुझे अनावश्यक जान पड़ा।

"फिर तुम क्या करोगी… क्या किसी नये एपार्टमेण्ट में रहने का इरादा है?"

"फिलहाल मैं सिर्फ यह जानती हूँ कि क्या नहीं करूँगी। माँ का स्मारक खड़ा करने की मुझमें कोई इच्छा नहीं है… माँ की एक भी चीज़ नहीं लूंगी, बहुत हुआ तो स्मृति के लिए उनकी ऐनक या अँगूठी… और कुछ नहीं। मैं नहीं चाहती कि उनकी चीज़ें बराबर मुझे उनकी याद दिलाती रहें, वरना…वरना सब-कुछ दोबारा से लौट आने का खतरा है…"

"डरो नहीं रोज़ी…सब-कुछ वापस नहीं लौटेगा।"

किसी ज़माने में स्मारक ही तो खड़ा किया था रोज़ी ने। इगोर की वह फ़ोटो जो मैट्रिक की पढ़ाई के समय ली गयी थी, फोटो के कोने में शोक का काला रिबन…और उसके सामने वे सब चीज़ें जो मृत्यु के दिन उसकी जेब में पायी गयी थीं, छद्म नाम का पासपोर्ट, विक्टोरिया सिगरेटों का पैकेट, माचिस की डिब्बी, एक बटन, डायरी का वह पन्ना जिस पर उस प्रथम रूसी सिपाही के हस्ताक्षर थे जिसे इगोर ने गले लगाया था। और रोज़ी…वह काली पोशाक पहनकर इन चीज़ों के सामने बैठ जाया करती थी और सूनी आँखों से घन्टों उन्हें ताका करती थी। जिस क्षण इगोर की घड़ी का समय ठहर गया था, उसी क्षण से रोज़ी के लिए भी समय की गति रुक गयी थी। उन्हीं दिनों रोज़ी के बाल दूध-से सफ़ेद हो गए थे। उसने एक बार मुझे बताया भी था कि यदि माँ की चिन्ता न होती तो बहुत पहले ही उसने आत्म-हत्या कर ली होती।

मैं जानता था उसका निश्चय अडिग है। मुझमें और मेरी बहन में यही बुनियादी अन्तर है···वह जो मन में आए कर लेती है और मैं कुछ भी न करने के बहाने ढूँढता रहता हूँ। उस क्षण वह मेरी आँखों में बहुत ऊँचा उठ गयी थी। जितनी मेरी उम्र गुज़रती जाती है, एक बात बहुत स्पष्ट समझ में आने लगी है कि सही मानों में मूल्यवान व्यक्ति वही है जो दूसरों के लिए कुछ करने की सामर्थ्य रखता है।

अलेन्का ने दरवाज़ा खटखटाया।

"मीरेक चाचा, तुम्हारी चाय बना दूँ? फिर मुझे स्कूल जाना है।" रोज़ी ने कुछ और नहीं कहा और हाथ बढ़ाकर अपना बैग उठा लिया। जाने से पहले उसने मेरे चेहरे को चूमा। उसे खुशी थी कि मैंने उसे समझने की कोशिश की थी और उसे निराश नहीं किया था।

१८

और तब मैंने सोचा कि वह शहर की तरफ़ जाने वाली सड़क पर जा रही होगी···पुरानी कीचड़ और नयी बर्फ से अटी सड़क पर। हाथ में सफ़ेद और भूरे रंग वाला बैग होगा···पेंसिलों कापियों और 'पार्टी लाइफ़' के पुराने अंकों से भरा हुआ। मैं गुसलखाने में—जिसे खास मेरी खातिर गर्म किया गया था—जाकर शेव करने की तैयारी करने लगा। ख़याल आया कि कहीं दुनिया के कोने में एक छोटा अजान प्राणी है, जिसका अभी कोई चेहरा नहीं, लेकिन जिसकी मदद से रोज़ी माँ के मृत चेहरे को भुला सकेगी···अब वह उसे पहले की तरह भयभीत और आतंकित नहीं कर सकेगा। रोज़ी के निश्चय ने मुझे काफ़ी परेशान-सा कर दिया था···माँ को इतनी जल्दी भुला देने का यह तरीका मुझे कुछ-कुछ अशोभनीय-सा भी लग रहा था। किन्तु बाद में मुझे लगा कि मेरी परेशानी का कारण उतना रोज़ी को लेकर नहीं है जितना अपने को लेकर···मुझे डर था कि ज़ाहोरी के लोग रोज़ी के फ़ैसले को सुनकर हमारे समूचे परिवार पर

टीका-टिप्पणी करेंगे। किन्तु रोजी डिगेगी नहीं· · ·हँसी उड़ाने वालों को अँगूठा दिखाकर और कंधे सिकोड़कर महज़ हिकारत की दृष्टि से देखेगी। यह कोई नयी बात नहीं होगी। वह उन सब लोगों से नफ़रत करती आयी है, जिन्होंने हँसी-हँसी में उसका नाम 'चाँदी' रखा था· · · ऐसे लोग, जिनकी नजरों में रोजी की सार्वजनिक कार्यवाहियाँ महज एक अधेड़, अकेली औरत की सनक से ज़्यादा महत्त्व नहीं रखतीं। नहीं, रोज़ी अवश्य ही अपने इरादे पर अडिग रहेगी। एक बार जब वह मन में कोई बात ठान लेती है तो उसे पूरा करके ही छोड़ती है।

"पागल हुई हो· · ·मैं सपने में भी नहीं सोच सकता।" ये पिताजी के शब्द थे जो उन्होंने रोज़ी से कहे थे। पन्द्रह वर्ष की उम्र में सेन्ट्रल-स्कूल की परीक्षाएँ समाप्त करने के बाद रोज़ी ने पिताजी से प्रार्थना की थी कि वह ग्रामर-स्कूल की परीक्षाओं में बैठना चाहती है। पिताजी ने एक नहीं सुनी· · ·वह लड़की है, कहीं घरेलू काम की ट्रेनिंग लेकर उसे घर बसाना चाहिए। रोज़ी ने बहस नहीं की· · ·आँखें मूँदकर पिताजी की बात मान ली। दो वर्ष तक वह मि० ऑगस्त की दुकान में कपड़े बेचने का काम करती रही। जिस दिन मि० ऑगस्त ने—जो अभी तक कुँवारे थे—बिलबिलाते-भाव से रोज़ी को अपनी बाँहों में फँसाने की कोशिश की थी, उसने एक अनुभवी स्त्री की तरह उत्तर दिया था, "अच्छा तो पुरुष लुटेरों से ज्यादा कुछ नहीं ?" (उसने वह वाक्य बोलकर की एक कविता में पढ़ा था· · ·) उस रात वह पिताजी की वर्कशॉप के पीछे वाले कमरे की खिड़की से कूदकर ज़ाहोरी से भाग खड़ी हुई। पाँच वर्ष बाद जब वह लौटी तो उसने बढ़िया ओवरकोट और रेशम की जुराबें पहन रखी थीं· · · १२०० क्राउन मासिक वेतन की नौकरी, सो अलग।

पिताजी का गुस्सा कम नहीं हुआ था· · ·लानत-फटकार के अलावा उन्होंने रोज़ी से साफ़ कह दिया कि वह उनके घर की देहरी के भीतर नहीं आ सकती· · ·परिवार से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। उपहार के रूप में रोज़ी पिताजी के लिए जो बटुआ लायी थी, गुस्से में लाल-पीले

होकर उन्होंने उसे फाड़कर बाहर फेंक दिया। माँ को भी स्पष्ट पत्र से कोई जानकारी नहीं थी कि इस दौरान रोज़ी प्राग में क्या करती रही है· · ·हालाँकि गुप्त रूप से वह रोज़ी के साथ पत्र-व्यवहार करती रहती थीं। पता चला कि पहले उसने किसी घर में नौकरानी का काम किया, फिर कुछ दिनों तक सिनेमा की अटैण्डैण्ट बनी और बाद में किसी स्वीडिश स्टील मैकैग्र तिनिधि की सेक्रेटरी की हैसियत से काम किया। किन्तु पिताजी ने अपनी कल्पना में उसके जीवन का एक दूसरा ही चित्र खींच रखा था· · ·धनी लोगों के चंगुल में एक भोली-भाली लड़की का फँसना, फिर पतन की शुरुआत, नंगी औरतें, शराब और मिस्र की सिगरेटों का वासनालोलुप झिलमिलाता वातावरण· · ·और उनके मस्तिष्क में इस भयानक जीवन का निचोड़ सिर्फ़ एक शब्द में भरा था· · ·नाइट-क्लब। रोज़ी को सामने देखकर पिताजी की सब शंकाएँ एक बार फिर जीवित हो उठीं और तैश में आकर उन्होंने उस पर थप्पड़ों की बौछार शुरू कर दी। 'रोज़ी कुछ नहीं बोली· · ·चुपचाप पिताजी के सामने विश्वविद्यालय की डिग्रियों और डिप्लोमाओं का बंडल रख दिया। इन पाँच वर्षों में वह जर्मन और फ्रेन्च भाषाओं की समस्त स्टेट-परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो चुकी थी।

हमें जल्दी ही पता चल गया कि वह जाहोरी सिर्फ़ हम लोगों से मिलने आयी थी और कुछ दिनों बाद ही वापस लौट जायेगी। पहला पोस्टकार्ड हमें नूरन दुर्ग से मिला··· जिस आसान, सहज ढंग से वह हमारा शहर छोड़कर प्राग चली गयी थी, उसी ढंग से वह अपना देश छोड़कर फ्रान्स चली गयी थी। मेरी खुशी का पारावार नहीं रहा··· मैं उन दिनों स्टाम्प इकट्ठा किया करता था। रोज़ी ने पेरिस में अपना नाम बदलकर रेनी रख लिया था, किन्तु आज भी वह अपने पेरिस-प्रवास के बारे में ज्यादातर खामोश रहना ही पसन्द करती है। मुझे सिर्फ़ एक फोटो याद है जो वह अपने साथ लायी थी··· उसमें वह नर्स की पोशाक पहनकर खड़ी थी, एक बच्चे को गोद में उठा रखा है और एक दूसरे बच्चे को, जिसके बहुत सुन्दर घुँघराले बाल थे, खिलौने दे रही है। एक

दूसरी फोटो में पेरिस की किसी चेक-कॉलोनी की रसोई में वह एक बड़े पतीले में कलछी घुमा रही है। एक और भी फोटो थी जिसमें एक स्थूल-काय आदमी कमीज के बटन खोले खड़ा था, उसके मुँह में सिगार दबा था और रोज़ी उसके कंधों पर हाथ रखे खड़ी थी। फोटो की पृष्ठभूमि में एक अधूरा चित्र भी दिखायी देता था जिससे यह संदेह पक्का हो गया था कि रोज़ी की बग़ल में खड़ा व्यक्ति एक नामी चेक-चित्रकार है, जो उन दिनों पेरिस में रहता था। किन्तु इससे यह अनुमान लगाना शायद उचित नहीं होगा कि रोज़ी अपने किसी प्रेमी से मिलने के लिए ही पेरिस गयी थी।

रोज़ी की यह दुस्साहसी जीवट-भरी, जिन्दगी पिताजी को एक आँख न भाती थी, वह उसके कारण काफ़ी परेशान भी रहते थे। किन्तु दूसरी तरफ़ वह उसके साहस की सराहना किये बिना भी नहीं रह सकते थे··· कहीं वह महसूस करते थे कि स्वयं उनमें कभी इतना साहस नहीं आ पायेगा। रोज़ी में एक अजीव आत्मविश्वास-भरी स्वच्छन्दता थी··· शायद यही कारण था कि बेरोज़गारी के उस बुरे ज़माने में भी उसने पेरिस से लौटकर एक अच्छी-खासी नौकरी आसानी से पा ली थी। यों रोज़ी के रंग-ढंग देखकर पिताजी की आँखें फैल जाती थीं··· सड़क पर सिगरेट पीने में भी उसे संकोच महसूस नहीं होता था। छुट्टियों में वह अक्सर अपनी शामें कम्यूनिस्ट कार्यकर्त्ता थियोडोर लिश्का की वर्कशॉप में गुज़ारा करती थी। "तुम वहाँ इतनी देर तक क्या करती रहती हो?" पिताजी गुर्राते हुए उससे पूछते थे—"सब-कुछ तो कर लिया, अब क्या कम्यूनिस्ट बनना बाकी रह गया है?" "अभी नहीं··· फ़िलहाल तो मैं उन्हें सिर्फ़ अपना वोट देती हूँ।"

"सुना तुमने?" पिताजी माँ को पुकारते हुए कहते, "इसको हमने जो पाल-पोसकर बड़ा किया, सो इस दिन के लिए। जानती हो, उस आदमी से दोस्ती गाँठने का मतलब है—खुद अपने सिर पर आफ़त मोल लेना। अभी उस दिन पुलिस ने उसकी वर्कशॉप की तलाशी ली थी।"

"मुझे सब मालूम है।" रोज़ी ने हँसते हुए कहा। और फिर वह चटखारे ले-लेकर सार्जेन्ट रोटवॉर के बारे में बताने लगी, जिसे थियोडोर की वर्कशॉप में एक भी गैर-कानूनी चीज़ नहीं मिल सकी। आखिर में उसकी नज़रें उन टिकटों पर जा पड़ीं जिन पर स्तालिन की तस्वीर अंकित थी। सार्जेन्ट ने उन टिकटों को जब्त कर लिया। थियोडोर ने जवाब में जो कुछ कहा, उसे सुनकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुई थी, "सार्जेन्ट साहब, इस तस्वीर को ज़रा ध्यान से देख लीजिये··· एक दिन आप सब लोग उसे सलाम करते हुए दिखाई देंगे।"

तीसवीं वर्षगाँठ के बाद जब कभी रोज़ी घर आती, माँ उससे एक ही प्रश्न पूछा करती थीं, "अब शादी कब करोगी? क्या बुढ़ापे तक कुंवारी बैठी रहोगी? शादी और बच्चे, औरत के लिए इससे ज़्यादा और क्या बड़ी बात होती है?"

रोज़ी हमेशा माँ की बात टाल देती··· ऊँची, गर्वीली नाक के पीछे विरोध उभर आता, "कुंवारी तो क्या रहूँगी माँ··· हाँ बूढ़ी ज़रूर हो जाऊँगी। समय काफ़ी है। मैं अभी तक ऐसे आदमी से नहीं मिली, जिसके साथ दो हफ़्ते रहने के बाद मेरा मन न उखड़ गया हो।"

वह आदमी उसे मिला, सन् बयालीस की उन भयानक गर्मियों में। इगोर बोहरिज़ेक पतला-दुबला यहूदी था जो मिस्र की पुरातन संस्कृति का अध्ययन कर रहा था और साथ में ज़ब्त किये गये पुस्तकालयों के विभाग में यहूदी सम्प्रदाय के लिए काम भी करता था। उम्र बहुत कम थी और देखने में सिर्फ़ लड़का-सा लगता था। सिर से पैर तक रोज़ी उसके प्रेम में डूब गयी थी। जब एक दिन उसने फोन पर रोज़ी को बताया कि उसे ट्रान्सपोर्ट* में जाने का ऑर्डर मिला है। तब उन्हें एक-दूसरे से परिचित

*ट्रान्सपोर्ट—यहूदियों को कॉन्सनट्रेशन कैम्प भेजने की विशेष व्यवस्था। जर्मन प्राधिकारी 'ट्रान्सपोर्ट' में शामिल होने वाले यहूदियों को यह नहीं बताते थे कि उन्हें यातना-गृह अथवा गैसचेम्बरों में भेजा जा रहा है। —अनु०

हुए सिर्फ़ तीन सप्ताह बीते थे। ख़बर सुनते ही रोज़ी भागते हुए उसके घर आ पहुँची। वह अपने सूटकेसों के पास कठपुतली-सा बना खड़ा था··· अवश और असहाय। उसके ओवरकोट के बटन खुले थे जिस पर पीला सितारा (यहूदियों को यह निशान लगाना पड़ता था) लगा था। उसने अपनी खूबसूरत, कमज़ोर आँखें एक-दो बार झिपझिपायीं और फिर चमड़े के टुकड़े से अपनी ऐनक के शीशे साफ़ करने लगा। रोज़ी ने सिसकते हुए उसे अपनी बाँहों में बाँध लिया··· वह क़द में उससे लम्बी थी। फिर अचानक रोज़ी ने उसके कोट से 'पीला सितारा' उखाड़ लिया "लेकिन··· यह मना है···" लड़के ने आँखें फाड़कर उसकी ओर देखा। किन्तु रोज़ी बिना एक शब्द बोले अपना काम करती रही। उसने दोनों सूटकेस खोल डाले और उनमें से कुछ आवश्यक चीज़ें निकालकर एक पोटली में भर दीं।

"यह तुम क्या कर रही हो ?" इगोर ने घबराहट-भरे स्वर में कहा, "अगर उन्होंने हमें पकड़ लिया तो मार डालेंगे।" उस क्षण रोज़ी ने व्यंग्य-भरी निगाह से उसकी ओर देखा, "तुम सोचते हो, वहाँ तुम बच जाओगे ?"

वे बाहर अँधेरे में चले गये। रोज़ी मुख्य सड़कों से घर के चौकीदार के सामने उसे सीधा अपने फ्लेट में ले गयी··· मानो उसे किसी बात का खतरा न हो।

उस दिन से मेरी बहन रोज़ी एक ख़तरनाक दुहरी जिन्दगी* बिताने लगी··· एक ऐसी जिन्दगी जिसके टेकनीक और व्यवहार के बारे में आज भी मेरे विचार काफ़ी धुंधले हैं। तफ़सीलें मुझे नहीं मालूम··· मैं सिर्फ़ इतना जानता हूँ कि उसकी योजना को सफल बनाने में यदि बहुत से

---

*फासिस्ट कानून के अनुसार किसी यहूदी को अपने घर छिपाना या शरण देना संगीन अपराध माना जाता था जिसके लिए मृत्यु की सज़ा भुगतनी पड़ती थी। —अनु०

लोगों ने हाथ न बँटाया होता तो वह शुरू होने से पहले ही खत्म हो जाती। मैं उन लोगों से आज भी परिचित नहीं हूँ जिन्होंने रोज़ी को मदद दी थी। उन दिनों रोज़ी की गुप्त 'अण्डर-ग्राऊंड' कार्यवाहियों का क्षेत्र भी अधिक व्यापक हो गया था। मैं आज भी रोज़ी से यही पूछने का साहस नहीं बटोर सका कि लड़ाई के दिनों में उसने मुझे अपना विश्वासपात्र बनाना क्यों नहीं उचित समझा। ऐसे मौकों पर भी जब उसे कई बार निपट अजनबियों से मदद माँगने के लिए विवश होना पड़ा, वह एक बार भी मेरे पास नहीं आयी। उसने माँ को भी अपनी गुप्त कार्यवाहियों के बारे में कुछ नहीं बताया था, लेकिन इसका कारण मैं समझ सकता हूँ··· वह माँ को किसी संकट में नहीं डालना चाहती थी, इसके अलावा शायद उसे यह डर था कि माँ को एक चीज़ बताने के बाद बहुत-सी चीज़ों की व्याख्या देनी पड़ेगी, जिससे उसे सख्त चिढ़ थी। किन्तु उसने मुझे क्यों किनारे कर दिया, यह मैं आज भी नहीं समझ पाता। संभव है, उसने तराज़ू में तोलकर पाया होगा कि मैं एक परिपक्व, मज़बूत और असली इन्सान की हैसियत से कठिनतम संकट की परीक्षा में सफल नहीं हो पाऊँगा··· यह विचार आज भी काँटे की तरह कहीं मेरे भीतर गड़ता है। क्या मैं शतरंज के बोर्ड पर सिर्फ़ काल्पनिक लड़ाइयाँ ही लड़ने के काबिल हूँ? क्या मेरे जैसे लोग हमेशा ज़िन्दगी के सुविधाजनक हाशिये पर ही रहेंगे··· एक अतिरिक्त पूरक की तरह, खिलौनों की तरह? सही मौका आने पर मेरी ओर कोई ध्यान नहीं देगा, उसी तरह जैसे ज़िन्दगी के व्यावहारिक मामलों में लोग लँगड़े-लूलों, अपाहिजों और बच्चों की ओर ध्यान नहीं देते? शायद मेरे इस अभाव से सब परिचित हैं··· वे अच्छी तरह जानते हैं कि मैं क्या हूँ। मेरी ज़िन्दगी कुण्ठाओं, विशेषाविकारों और बहानों से भरी है। लड़ाई के ज़माने में मैंने एक भी ग़ैर-सैद्धांतिक काम नहीं किया। मैं उन दिनों होने वाली घटनाओं से भली-भाँति परिचित था और मुझे विश्वास था कि युद्ध के बाद हमारे समाज में ज़बरदस्त परिवर्तन होंगे···इसी विश्वास को लेकर मैंने सहर्ष आनेवाले भविष्य को चुना था। किन्तु मेरे लिए यह सब एक मानसिक-प्रक्रिया से

अधिक कुछ नहीं था। असली काम दूसरे लोग कर रहे थे। आज भी यह बोझ एक न चुकाए जाने वाले कर्ज़ की तरह मुझ पर लदा है। उन्हीं दिनों मुझे एक एजेन्सी में नौकरी मिल गयी थी···सारा समय मैं एजेन्सी के डायरेक्टर मि० कोर्डा के साथ शतरंज खेलने में गुजारा करता था। मैंने लगभग अपनी सारी किताब 'थ्योरी ऑफ़ एण्ड गेम्स' दफ़्तर में ही लिखी थी। मि० कोर्डा को इस पर ज़रा भी आपत्ति नहीं थी···बल्कि वह मुझे प्रोत्साहित ही किया करते थे। उनकी आँखों में मैं एक मूल्यवान वस्तु था, जिसे प्रदर्शनी में सँभालकर रखा जाता है। शतरंज के इस उत्साही सज्जन ने मेरे इर्द-गिर्द रेत की बोरियाँ खड़ी कर दी थीं मानो मैं किसी कैथेड्रल की खिड़की हूँ। और इस तरह मैं प्रकृति के एक अनमोल पौधे की तरह गर्म और सुरक्षित जलवायु में जीवित रहकर शांति के दिनों की प्रतीक्षा कर रहा था ताकि योद्धा लड़ाई से छुट्टी पाकर प्रकृति के संरक्षित, अनमोल नमूनों की ओर एक बार फिर ध्यान दे सकें···दूसरे शब्दों में जब मैं बड़ी तीव्रता से उस घड़ी की प्रतीक्षा कर रहा था जब शतरंज के अन्तर्राष्ट्रीय-टूनमिण्ट दोबारा से शुरू हो सकें।

नौ मई का दिन···दोपहर को साढ़े चार बाजे छत पर छिपे एक जर्मन सिपाही की गोली ने इगोर को खत्म कर दिया। वे दोनों उस दिन एक-दूसरे का हाथ पकड़े उल्लासमय शहर की गलियों में (वह मुक्ति का पहला दिन था) चुपचाप घूमते रहे थे···बिना एक शब्द भी बोले···मानो पिछले महीनों की थकान ने उनके मुँह पर ताला लगा दिया हो। वे घूम-घूमकर बन्दूकों और बेरीकेडों को देख रहे थे···लाल फ़ौज के सिपाहियों को देखते हुए उनका मन नहीं भरता था। कृतज्ञता को प्रदर्शित करने की वह एक पवित्र यात्रा थी। सहसा रोज़ी की जुराब का गेलिस ढीला पड़ गया था···वह उसे बाँधने के लिए दरवाजे के पीछे गयी थी। इगोर दीवार के सहारे खड़ा था, धूप उसके चेहरे को सहला रही थी··· वह खुश था, अब उसे कुछ नहीं हो सकता। ज्योंही रोज़ी गेलिस बाँधने के लिए नीचे झुकी, बन्दूक का धमाका सुनायी दिया था।

उसके बाद रोज़ी लगभग दो वर्षों तक बीमार रही थी। इगोर की अर्थहीन···एक दृष्टि से देखें तो ऐसी बेहूदा मृत्यु के बाद जो किसी तर्क के घेरे में नहीं आती, रोज़ी जिस खोयी-खोयी अवसन्न हालत में रहने लगी थी, उसे शायद बीमारी ही कहा जायगा। दो साल बाद जब वह कुछ चलने-फिरने की हालत में हुई तो वह बिल्कुल बदल चुकी थी। उसके आचार-व्यवहार में एक हठीली··· कुछ-कुछ असहिष्णु-किस्म की नैतिक कट्टरता भर गयी थी जिसे राजनीतिक स्तर पर हम कभी-कभी गलत ढंग से 'वामपंथी संकीर्णता' कहते हैं। वह पार्टी की शरण में कुछ उसी तरह गयी थी जिस तरह पुराने ज़माने में ज़िन्दगी के थके-हारे लोग ईश्वर की शरण खोजने जाते थे। और रोज़ी के लिए एक न्यायसंगत समाज का स्वप्न भी कुछ ऐसा था जिसमें साम्यवाद ऐसे गिने-चुने लोगों का सम्प्रदाय होगा, जो स्वीकृत सिद्धान्तों के अनुसार अपना जीवन बितायेंगे। चूंकि खुद रोज़ी के भीतर अदम्य उत्साह की ज्वाला भड़कती रहती है, उसे हमेशा दूसरों में उत्साह की कमी अखरती रहती है। कभी-कभी वह काफ़ी हताश-सी हो जाती है और फ़रवरी क्रांति* के पहले वाले दिनों को याद करने लगती है जब उत्साह और जोश के उमड़ते ज्वार में नये भाईचारे की भावना उत्पन्न हुई थी। यह सही है कि जहां एक तरफ़ भौतिक उन्नति इतनी साफ दिखाई देती है वहां दूसरी तरफ़ मनुष्य की प्रकृति में होने वाले ढीले-ढाले परिवर्तन देखकर वह काफ़ी झुंझला-सी जाती है। उसे लगता है कि कहीं हम ग़लती कर रहे हैं··· उसे शायद यह भी आशंका होती है कि हमारे रहने-सहने का बुर्जुआ स्तर बड़े पैमाने पर एक नए बुर्जुआ-टाइप के लोगों को जन्म दे रहा है।

"इसमें नुकसान क्या है?" एलबर्ट रोज़ी से बहस करते हुए कहता है, "आखिर हम समाजवाद का निर्माण कर रहे हैं···किसी तीर्थस्थान का नहीं। शायद कुछ हद तक तुम ठीक हो···लेकिन यह अनिवार्य है

*फरवरी १९४८ में पहली बार चेकोस्लोवाकिया में कम्यूनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में नयी सरकार बनी थी। —अनु०

और इसे रोका नहीं जा सकता। तुम्हारी राय में हमें क्या करना चाहिए ? क्या जीवन-स्तर को ऊँचा उठने से रोक देना चाहिए ?"

रोजी झल्ला पड़ती, "मुझे वेवकूफ़ क्यों वना रहे हो ? हमारा लक्ष्य क्या सिर्फ़ जीवन-स्तर उठाना ही है ? कम्यूनिस्ट इन्सान के वारे में हमारी कोई कल्पना नहीं ?"

"है···लेकिन शायद वह तुम्हारी कल्पना से वहुत अलग होगा।" एलवर्ट कहता, "तुम असल में तोलसतोय-पंथी हो।"

मुझे नहीं मालूम कि रोजी तोलस्तोय-पंथी है या नहीं···किन्तु वह एक ऐसी मेहनती पार्टी-मेम्वर है जो दिल तोड़कर संघर्ष करते हैं। मैं समझता हूं इस तरह के लोग अन्य संस्थाओं में भी देखे जा सकते हैं। पार्टी-टिकटों को इकट्ठा करना, लेक्चरों की व्यवस्था कराना···कोई काम उससे नहीं छूट पाता। और यद्यपि शहर की सोसायटी-महिलाओं से वह अलग रहती है, अपनी पोशाक और रुचियों में वह उनसे कहीं आगे है। कोई भी फ़ैशन उसकी नज़रों से ओझल नहीं हो पाता। पहनने-ओढ़ने में वह अपने प्रति कभी उदासीन नहीं दीखती। शायद यही कारण था कि कुछ वर्ष पहले जव वह ज़ाहोरी वापस आयी थी तो फ़ैक्टरी में काम करने वाली मजदूर औरतें उसे सन्देह की दृष्टि से देखा करती थीं। ज़ाहोरी के स्क्वॉयर में जव वह पहली वार मिलिशिया की नीली पोशाक पहनकर जलूस में दिखायी दी थी तो लोगों ने उस पर कटाक्ष किए थे।

यह सही है कि रोजी अपनी इच्छा से ज़ाहोरी में रहने आयी थी··· वह अक्सर मुझसे कहती थी कि वड़े शहरों में उसका मन नहीं लगता, किन्तु मुझे हमेशा यह महसूस होता है कि वह अपने को ज़ाहोरी के वाशिन्दों से कहीं ऊँचा समझती है। वह अण्डर-वियर वनाने वाले कारखाने में डायरेक्टर की सेक्रेटरी है···किन्तु जव कभी वह डायरेक्टर की चर्चा करती है उसके शब्दों के पीछे यह एक ख़ास वड़प्पन का भाव भरा रहता है मानो कह रही हो कि वह उसकी अपेक्षा कहीं वेहतर ढंग से फ़ैक्टरी

का संचालन कर सकती है। आज भी वह अतीत की उन स्मृतियों को नहीं भूल पायी है जब वह यूरोप के बड़े शहरों में घूमती थी···और यह अहसास उस समय और भी अधिक तीव्रता से उभर आता है जब कोई सुप्रसिद्ध कलाकार ज़ाहोरी में पधारता है। प्रदर्शन या लेक्चर के बाद वह नैशनल क्लब हाउस में उसके साथ बैठकर बड़ी उमंग और उत्साह से बातचीत करती है। लगता है, लम्बी मुद्दत के बाद वह अपने किसी देश-वासी से अपनी ही भाषा में बातचीत कर रही हो। वह अनेक अभि-नेताओं, गायकों और कलाकारों को जानती है···और उनकी आँखों में भी ज़ाहोरी का आकर्षण सफ़ेद बालों वाली रेनी क्लिच्का ही है जो हर प्रोग्राम की व्यवस्था इतनी सफलता से कर लेती है। पिछले वर्ष उसने बड़े विराट् पैमाने पर ज़ाहोरी में एक सांस्कृतिक उत्सव आयोजित किया था··· दुर्भाग्यवश उस उत्सव में शहर को ६००० क्राउन का घाटा उठाना पड़ा।

हॉल में उस पर समाजवादी ब्रिगेड संगठित करने का नशा सवार हुआ है। लड़कियों की ब्रिगेड की बैठक रोज़ी के घर में ही लगती है। वह उन्हें 'समाजवादी जीवन' के सम्बन्ध में सलाह-मशवरा देती है···किस तरह का सलाह-मशवरा, यह मैं अभी तक नहीं जान सका हूँ। लेकिन उसके कमरे में क्लासिकल-संगीत का स्वर सुना जा सकता है। वे सब देर रात तक बहस करती रहती हैं। लड़कियाँ उसके घर से किताबें ले जाती हैं··· वे सब रोज़ी पर लट्टू हैं, इसमें कोई शक नहीं। किन्तु एलबर्ट इन कार्यवाहियों के बारे में बहुत आश्वस्त नहीं दिखायी देता, "कितनी हट्टी-कट्टी लड़कियाँ हैं···मुझे डर है कि कहीं रोज़ी इन सबको कला-प्रेमी न बना दे!"

१६

"मेरे लिए यह बहुत ज्यादा है…तुम कुछ नहीं लोगी ?" मैंने अलेन्का से पूछा। नाश्ते के लिए उसने मेरे सामने करीब छः औंस सलामी, चाय का बड़ा कप और रम का छोटा गिलास सजाकर रखे थे। यह खास मेरे लिए था…क्योंकि ज़ाहोरी में लोग नाश्ते के नाम पर साधारणतः सिर्फ़ दूध की कॉफ़ी और एक-दो स्लाइसें लेकर ही संतुष्ट हो जाते हैं। मेरा सुबह का जलपान—जिसे वे अंग्रेज़ी ब्रेकफास्ट कहते हैं… उन्हें काफ़ी हास्यास्पद जान पड़ता है। मैं चूँकि उनसे भिन्न हूँ, इसलिए मेरा नाश्ता भी उनके नाश्ते से भिन्न होना चाहिए। जब माँ जीवित थीं, तो वह भी सिर हिलाया करती थीं…भला नाश्ते के समय गोश्त खाया जाता है? अलेन्का ने मेरा साथ नहीं दिया… उसे दिन में सिर्फ़ तीन चार खाने की इजाज़त है वरना वह बहुत जल्दी मोटी हो जाएगी। मेरे प्रति उसका व्यवहार काफ़ी मृदु था…लगता जैसे वह किसी मरीज़ का मन बहलाने

की कोशिश कर रही हो। परिवार में होने वाली दुखद घटना के कारण वह काफ़ी गमग़ीन और गम्भीर-सी दिखायी दे रही थी। किन्तु जब सलामी की गन्ध पाकर काज़ान अपने पंजों के बल मेरी कुर्सी पर चढ़ने की कोशिश करने लगा, तो सहसा वह उसकी यौवन-सुलभ अल्हड़ता लौट आयी। गुस्से में उसे डाँटने लगी और फिर गले का पट्टा पकड़कर बाहर छोड़ आयी। जब वापस कमरे में लौटी, तो बरबस एक ख़ूबसूरत-सी मुस्कान उसके होंठों पर सिमट आयी थी।

मैंने देखा, किस तरह वह दोबारा अपने चेहरे पर ग़मग़ीन भाव ओढ़ने का प्रयत्न कर रही है। ठीक भी है। वह अब बच्ची नहीं रही···उसे खुद अपने बालिग़ होने का अहसास है। पता नहीं, उसके नाक-नक्श परिवार के किस आदमी पर गये हैं? उसका सिर, उसकी गोल-गोल बड़ी आँखें, उसका चौड़ा निचला जबड़ा? लगता है, आजकल की लड़कियों के नाक-नक्श अपने माता-पिता से उतना नहीं मिलते, जितना एक-दूसरे से। वह स्की करने की जीन्स, स्की के जूते और काला, खुरदरा स्की-स्वेटर पहने थी। आजकल की लड़कियाँ काफ़ी हृष्ट-पुष्ट दिखायी देती हैं···बड़े आदमियों के जूते ही उनके पैरों में फ़िट आते हैं। अलेन्का भी बड़ी हो गयी है। किन्तु उसके हाथ जो उसने मेज़ पर कैंची और काले रेशम की कतरनों के पास रखे हैं (कतरनें, जिनसे किसी ने शोक की पट्टी बनायी होगी) बच्चों के-से हैं···उसके नाख़ूनों के भीतर भोली, बचपनी धूल भरी है।

"मिरेक चाचा," उसने शरमाते हुए कहा, "अगर दादी को समय पर अस्पताल में पहुँचा दिया होता, तो क्या वह बच सकती थीं?"

"पता नहीं···शायद।"

"यह अच्छा हुआ कि बाबूजी ने उन्हें अस्पताल के मुर्दाघर में नहीं छोड़ा···वह भयानक था। बाबूजी ने कहा है कि मैं यह बात किसी से न कहूँ।"

"क्या तुम डर गयी थीं ?

"किससे ?"

"वहाँ···मुर्दाघर में ?"

"थोड़ा-सा। मैंने पहले कभी···"

वह सही शब्द जो टटोलने लगी। 'मुर्दा' शब्द उसे असंगत जान पड़ रहा था। उस शब्द के पीछे इतना निर्वैयक्तिक सूनापन छिपा था कि दादी के लिए उसे इस्तेमाल करना असंभव जान पड़ रहा था।

"···मैंने पहले कभी मरे हुए आदमी को नहीं देखा था। किन्तु उसके वाद मुझे विलकुल डर नहीं लगा। दादी विलकुल···कठपुतली-सी दिखाई देती थीं।"

कुत्ता गुर्राते हुए फ़र्श को कुरेदने लगा।

"काज़ान !" वह चिल्लायी, "वड़ा वेहूदा कुत्ता है। मिरेक चाचा, कुछ और लाऊँ ?"

"तुमने पहले से ही तीन आदमियों का नाश्ता मेरे सामने रख दिया है···नहीं, अव और नहीं।"

वह तश्तरियों को रसोई में ले गया। मैं आरामकुर्सी के सिरहाने लेटा ही था कि कुर्सी का हत्था नीचे गिर पड़ा। एलवर्ट के घर में शायद ही कोई चीज़ हो, जिसे मुकम्मिल कहा जा सके।

अलेन्का ने दक्ष हाथों से हत्थे को पुरानी जगह फ़िट कर दिया, "हमारे वावू भी वस एक ही हैं···कई वार कुर्सी की मरम्मत करने का वादा किया है, लेकिन तुम तो उन्हें जानते हो···हे ईश्वर, मुझे भागना चाहिए।"

वह अपनी घड़ी को सहला रही थी।

"दादी ने यह घड़ी मुझे पिछले साल दी थी···परीक्षाओं के नतीजे को देखकर।"

"मैंने सोचा था, आज तुम घर में ही रहोगी?"

"मैंने शुरू के तीन घण्टों की छुट्टी माँग ली थी···लेकिन ग्यारह बजे हमारा गणित का टेस्ट है। मेट्रिक की परीक्षाओं से पहले उसे काटना ठीक नहीं होगा।"

"आगे कौन-सा विषय लेने का इरादा है?"

"अभी कुछ तय नहीं किया··· शायद केमिस्ट्री। मैं उसमें काफ़ी तेज़ हूँ। या शायद कुछ और··· सचमुच अभी कुछ नहीं मालूम। मैं कोई ऐसा विषय चुनना चाहती हूँ, जो मुझे कहीं वाहर भिजवाने में मदद कर सके··· मिसाल के तौर पर फ्रेंच या अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषाओं का अध्ययन। अभी कुछ नहीं मालूम। तुम्हें मुझे सलाह देनी चाहिये···मिरेक चाचा! तुम जिमी शिमूनेक को जानते हो? तुम जरूर जानते होगे··· वह हमारे वाग़ में आया करता था, मुँह पर चेचक के दाग़ थे। वह ओदेसा गया है··· जहाज का अफ़सर बनेगा। अगर मैं लड़का होती, तो कुछ ऐसा ही करती।"

"तुम्हारे लिए केमिस्ट्री बुरी नहीं रहेगी।"

"मिरेक चाचा··· अगर कभी मैं प्राग आऊँ, क्या तुम मुझे अपने साथ कहीं वाहर ले जाओगे?"

"कहाँ?"

"यूँ ही··· थियेटर या कहीं नाचने के लिए··· प्राग आने की मेरी बड़ी इच्छा है। मैं वहाँ पिक भी खेलने जाऊँगी।"

पिक का मतलब है··· पिंग-पांग। दक्षिणी बोहेमिया के जूनियर-चेम्पियनशिप में अलेन्का तीसरे नम्बर पर आयी थी। गर्मी के दिनों में निचली मंज़िल के सामने लम्बी टेबल रख दी जाती है और दिन-रात वहाँ से पिंग-पांग की आवाज़ सुनायी देती रहती है। जाहोरी में गर्मी की छुट्टियों का यह अभिन्न भाग है··· उसी तरह जैसे चार बजे की खबरों से पहले रेडियो में कारमैन ओपेरा का आरम्भिक संगीत जो गिरजे के लाउडस्पीकर से सुनाया जाता है। नंगे पाँव और कमर तक अपनी कमीज़ के बटन खोले एलबर्ट अलेन्का को पिंग-पांग खेलते देखता रहता है। वह खुद अच्छा खिलाड़ी है, लेकिन एक सेट के बाद उसका दम फूल जाता है, और वह हाँपता हुआ घास पर लोटने लगता है। अलेन्का चाहे तो उसे आसानी से हरा सकती है, लेकिन वह अपने 'बाबू' की मूर्खता का मज़ाक नहीं उड़ाती और बड़े धैर्य के साथ उसके साथ पिंग-पांग खेलती रहती है।

मैं खिड़की से उसे जाते हुए देख रहा था··· बाग़ से गुज़रते हुए उसने मेरी तरफ़ देखा और हम दोनों ने हवा में हाथ हिलाये। उसने काले स्वेटर के ऊपर लैस की विन्ड-जैकेट पहन रखी थी और अपने बस्ते को आगे जाँघों पर थमा रखा था। वह उन हज़ारों लड़कियों में से एक थी जिन्हें छोटे-छोटे कटे बालों, स्वेटरों और तंग मोहरी की पतलूनों में देखा जा सकता है। जिस आधुनिक गरिमा और लचक के साथ वह स्कूटर की पिछली सीट पर बैठा करती थी, उसे देखकर मैं ठगा-सा रह जाता था। मुझे कभी-कभी हल्की-सी ईर्ष्या भी होती थी, जब मैं उसे लड़कों के गिरोह में देखा करता था··· कन्धों पर स्पोर्ट्स-बैग लटकाये, साइकिलों के हैंडलों पर झुके हुए वे आपस में न जाने कहाँ-कहाँ की बातें किया करते थे। मैं कभी-कभी उनसे बातचीत करने की कोशिश करता था··· लेकिन हमेशा असफल रहता था। वे हमेशा बहुत शिष्टता से पेश आते थे··· लेकिन मुझ पर विश्वास नहीं करते थे। म्यूनिख, लड़ाई, स्वतंत्रता··· जिन सब घटनाओं ने हमेशा के लिए हमारी ज़िन्दगी को निर्धारित किया था, उनके लिए वे किसी सुदूर, ऐतिहासिक अतीत की

चीज़ें थीं। वे नये लोग हैं··· ब्राण्ड न्यू। यूजिन भी इस वर्ष मेट्रिक की परीक्षा देगा··· किन्तु यूजिन नया नहीं है। यूजिन और मैं पुराने हैं।

अलेन्का स्कूल चली गयी थी, रोजी अपनी फ़ैक्टरी में होगी, एलबर्ट अपने दफ़्तर में। दोपहर···आधी छुट्टी का समय। ब्लास्ता इस समय अपनी केण्टीन में सॉसेज भून रही होगी। मैं घर में अकेला रह गया था, और मन-माफ़िक अपना वक्त गुज़ार सकता था। प्राय: यह मुझ पर ही निर्भर रहता है कि मैं किसी भी तरह अपना समय काट दूँ। मैं स्वतंत्र हूँ। अच्छा होता अगर मैं इतना स्वतन्त्र न होता। लोग एक-दूसरे से अर्थपूर्ण कार्य-कलापों की शृंखला के द्वारा जुड़े हैं··· जो भी इससे मुक्त हो जाता है, अपने बारे में दूसरों की तरह निश्चित नहीं रह पाता। कमरे में सन्नाटा था, मानो किसी ने अचानक किसी गाड़ी का इंजन बन्द कर दिया हो। मेरा दम घुटने लगा। इच्छा हुई, शहर का एक चक्कर लगा आऊँ। किन्तु पैर दरवाज़े पर ही ठिठक गये। शहर में जो कोई भी मिलेगा, उससे माँ के बारे में दो-चार बातें करनी पड़ेंगी। मैं दोबारा सोफ़ा पर बैठ गया। बिस्तर के ऊपर एक बैले-नर्तकी का चित्र था··· आधा वक्ष नग्न। जुजा होती, तो उसे यह चित्र अवश्य अच्छा लगता। परिवार के सब लोग अपने-अपने कामों में व्यस्त हैं— सिर्फ़ मैं हूँ जो बेकार कमरे में लेटा हूँ। सिर्फ़ अकेला मैं? नहीं··· पास ही एक दूसरा मकान है, जो कभी मेरा घर हुआ करता था और माँ वहाँ अकेली लेटी हैं···

एक झुरझुरी-सी मेरी देह में फैल गयी और मैं बदहवास-सा उठकर बैठ गया। उस खयाल के बाद लेटे रहने की तबियत मर गयी।

कटग्लास के फूलदान में जुजा के गुलाब रखे थे, और उनकी छाया पियानो पर गिर रही थी। मैं नीचे झुका यह देखने के लिए कि क्या मेरे चेहरे की छाया भी पियानो की वार्निश पर पड़ सकती है? मुझे अपनी दायीं आँख का घेरा दिखायी दिया। इस क्षण जुजा बैंक में बैठी

माचिस की तीली चबा रही होगी। शायद पिछली रात वह बिलकुल नहीं सोयी। शायद कल शाम वह मेरे घर आयी होगी— मेरे कमरे की चाभी उसके पास है— सम्भव है, वह अपने साथ किसी को लायी भी हो। ईर्ष्या से मेरा मन जल उठा। जुज़ा मेरे बिस्तर पर लेटी सिगरेट पी रही होगी और एक अजनबी आदमी—शायद वह लिबानिअन—हिकारत-भरी नज़रों से रेती पर लिखे मेरे नोट्स को उलट-पलट रहा होगा।

फूलदान के पास एक मोटी फ़ाइल रखी थी। मैंने उसे खोला ही था कि दरवाज़े के पीछे काज़ान की गुस्से-भरी गुर्राहट सुनाई दी। मैं चौंक गया मानो कुत्ते ने मुझे चेतावनी दी हो, कि दूसरों की चीज़ों को हाथ लगाना मना है। फ़ाइल के भीतर एक टाइप किया हुआ दस्तावेज़ रखा था, जिसके पन्ने पिनों से जुड़े थे। 'फ्रांसिस पेतरान' मैं पढ़ने लगा, "मेरा जन्म ३, अक्तूबर, १८९५ के दिन न्येमचित्से में हुआ था। मेरे पिता खेतिहर मजदूर थे—और मेरी माँ भी।"

जब मैं नौ वर्ष का था, मेरे पिता ने एक जगह मुझे नौकर रखवा दिया, कुत्ता फिर भौंकने लगा था और अपने पंजों से दरवाज़ा कुरेद रहा था। मैं पढ़ता रहा, "किसान की बीवी सारा मक्खन बेच डालती थी, क्योंकि वह मँहगा था और उसके बदले सस्ते दामों में मार्जरीन खरीदकर काम चलाया करती थी। इससे पैसे दो पैसे की बचत हो जाती थी। किसान प्रायः हमारे साथ खाना नहीं खाया करता था··· औपचारिक रूप से केवल एक-दो बार। हम अलग-अलग मेज़ों पर खाना खाते थे।" कुत्ते ने फिर परेशान करना शुरू कर दिया था। मुझे लगा, अगर मैं फ्रांसिस पेतरान की आत्म-जीवनी दोबारा फ़ाइल में रख दूँ तो शायद यह कुत्ता तुरन्त भौंकना बन्द कर देगा। जब मैं नहा रहा था, तो उस समय भी काज़ान चोरी-चुपके गुसलखाने में आ गया था··· क्योंकि वहाँ टब के पास उसका कम्बल रखा था। उस समय भी मैं जल्दी-जल्दी नहाकर बाहर आ गया था, ताकि··· वह मेरी उपस्थिति से परेशान न हो। मैंने उठकर दरवाज़ा खोल दिया, "क्या बात है काज़ान?" मैंने ज़रा डपटते

हुए स्वर में कहा। किन्तु मुझे अपनी आवाज़ कृत्रिम जान पड़ी। काज़ान ने उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया और दरवाज़े से कुछ कदम हटकर खड़ा रहा। वही जानवर जो एलबर्ट, ब्लास्ता और अलेन्का के इशारों पर नाचता था, तुरन्त समझ गया कि मेरी आवाज़ का कोई विशेष मूल्य नहीं है। मैं फ़ाइल उठाकर दोबारा आरामकुर्सी पर बैठ गया। "इधर आओ।" किन्तु वह टस-से-मस नहीं हुआ, सिर्फ अपने अगले पंजों पर बोझ डालकर खड़ा रहा। मैं दोबारा पढ़ने की कोशिश करने लगा, किन्तु जब कभी मेरी आँखें उठतीं, मैं देखता कि वह अपनी उदासीन, किन्तु चमकती आंखों से मुझे घूर रहा है। मैं बेचैन-सा हो उठा··· मुझे लग रहा था मानो उसकी आँखें हर क्षण मेरी फ़िल्म खींच रही हैं, मानो सहसा मुझे उसके सामने अपनी हर गतिविधि की सफ़ाई देनी होगी। मैं उछलकर खड़ा हो गया और रसोई से सलामी के कुछ बचे-खुचे टुकड़े ले आया।

"काज़ान··· यह लो। यह देखो··· हाँ, इधर आओ।"

मैंने चैन की साँस ली। मुझे यह देखकर खुशी हुई कि वह अब सहज ढंग से हिल-डुल रहा है और उसे घूंस दी जा सकती है। मैंने दोबारा फ़ाइल खोल ली। काज़ान ने अपना सिर कुर्सी के हत्थे के नीचे खिसकाकर मेरी गोद में रख दिया।

"जब मैं पन्द्रह वर्ष का था," फ्रांसिस पेतरान का कथन जारी था, "एक बढ़ई की वर्कशॉप में मैं अप्रेण्टिस लग गया। इसके लिए मैं अपनी माँ का शुक्रगुज़ार हूँ···वह जानती थीं कि एक खेतिहर मज़दूर की ज़िंदगी आसान नहीं है, और उसकी तुलना में एक दक्ष कारीगर कहीं ज्यादा बेहतर है। उसे ज्यादा काम भी नहीं करना पड़ता। वह अक्सर कहा करती थीं कि एक खेतिहर-मज़दूर और बैल की ज़िन्दगी में सिर्फ़ अंगुल-भर का फ़र्क है।

मैंने दो पन्ने पलट डाले।

"१९३५ में पहली बार ज़ाहोरी के चौक में एक पब्लिक-मीटिंग का आयोजन किया था। चुनाव से कुछ दिन पहले। उस मीटिंग में मैंने भी

भाषण दिया था। मज़दूरों की ग़रीबी का ज़िक्र करते हुए मैंने कहा था कि जितना उन्हें मासिक वेतन मिलता है, उतनी ही रकम पुलिस के कुत्ते के भरण-पोषण पर ख़र्च की जाती है··· एक बेरोज़गार मज़दूर की हालत तो उससे भी बदतर है, उसे हफ़्ते में सिर्फ़ दस क्राउन ही मिलते हैं। मैंने आने वाली क्रान्ति का ज़िक्र भी किया था जो सब-कुछ बदल देगी··· इस भाषण के लिए मुझे एक महीना क़द की सज़ा मिली··· जुर्माना अलग।"

फ़ाइल में इसी किस्म की सोलह आत्म-जीवनियाँ दिखायी दीं। पिछली गर्मियों में एलबर्ट ने मुझे बताया था, कि वह इस क्षेत्र के मज़दूर-आन्दोलन के इतिहास के लिए सामग्री इकट्ठी कर रहा है। मैं पढ़ता रहा आख़िरी पन्ने तक। काज़ान आराम से लेटा था···जब मैं उसके कानों के बीच खुजलाता, तो वह आनन्द से विभोर हो जाता। फ़ाइल में लिखे बहुत-से नामों से मैं परिचित हूँ। शाम के समय एलबर्ट अपनी टाइप-मशीन के आगे बैठ जाता है, और उन वाक्यों को नोट करता जाता है, जो बड़े अटपटे ढंग से लिखे गये हैं— अक्सर उनमें विराम या अर्द्धविराम की परवाह नहीं की जाती। शायद वह पार्टी के बूढ़े-बुज़ुर्ग साथियों के पास भी जाता है··· वे बोलते हैं और एलबर्ट लिखता जाता है। मैं भी मेज़ के सामने बैठकर लिखता हूँ···सिर्फ़ एक खेल का इतिहास जिसमें काठ की बनी पैदल-सेना काठ के बने राज्य-सिंहासनों को हिला देती है। फ़ाइल में दर्ज की हुई ये ज़िन्दगियाँ कितनी स्पष्ट, कितनी सहज हैं, और उनमें एक अजीब-सी समानता है—एक ख़ास बिन्दु पर उनकी आत्म-कथा पार्टी की कहानी बन जाती है, उपन्यास इतिहास में बदल जाता है। किन्तु मेरा जीवन एक उपन्यास की तरह शुरू हुआ था और अब एक मोनोलॉग में बदल गया है। मेरी उम्र जितनी बढ़ती जाती है, मुझे लगता है कि मैं ज़्यादा-से-ज़्यादा अपने से ही वार्तालाप करता जा रहा हूँ। अरसे से मैं जान गया हूँ कि प्राग में अपने दोस्तों से बातचीत करना मेरे लिए एक ऐसी कला बन गया है जिसके द्वारा मैं उनके और अपने बीच किसी प्रकार का सम्बन्ध आसानी से टाल सकता

हूँ। कमरे में निपट अकेले रहना··· जैसे इस क्षण हूँ··· दुनिया से उतना ही दूर रहना, जितना चाँद से··· यह मेरी जिन्दगी की बुनियादी पोजीशन है। मैं वहाँ नहीं हूँ, जहाँ मुझे मौजूद रहना चाहिए और जहाँ दुनिया की हर महत्त्वपूर्ण घटना घट रही है, मैं वहाँ नहीं हूँ।

मैं पुराने, उघड़े हुए कालीन पर चहल-क़दमी करने लगा··· दीवार से खिड़की तक, खिड़की से दीवार तक। मुझे लगा जैसे मैं किसी कमरे में न होकर ज़मीन के नीचे धँसे किसी तहखाने में बन्द हूँ··· एक ऐसे तहखाने में जिसका टेलीफोन-कनेक्शन कट गया है और मैं ऊपर की दुनिया से कोई सम्पर्क क़ायम नहीं कर सकता। मेरे लिए कमरे में रहना असह्य हो उठा। मैंने अपना ओवरकोट उठाया और शहर की तरफ़ निकल पड़ा।

१७

मुझे नहीं मालूम था कि शहर में एक अप्रीतिकर स्थिति का सामना करना पड़ेगा।

जिस रेस्तरां में हम सबको मिलना था, वहाँ पहुँचकर जिस पहले व्यक्ति पर मेरी निगाह पड़ी, वह व्लास्ता का भाई था— यार्डा। उसे देखते ही अनायास मेरे पाँव दरवाज़े की तरफ़ मुड़ गये, ताकि मैं जल्द-से-जल्द बाहर निकल सकूँ। किन्तु दुर्भाग्यवश उसने मुझे देख लिया··· हाथ हिलाते हुए वह मुझे भीतर बुला रहा था।

मेरे लिए कोई दूसरा चारा न रहा। वह अपनी टेबुल से उठकर पाँव बढ़ाता हुआ मेरे पास आया। वह काफ़ी गन्दा दिखायी दे रहा था··· उसने रबड़ के भारी जूते पहन रखे थे, सिर पर चौड़ा टोप था जिसकी अन्दरूनी पट्टियाँ उसने ऊपर चढ़ा रखी थीं। मैंने आँखें ऊपर उठाईं··· कैसा संयोग है। हम दोनों ने ही आश्चर्य प्रकट करने का बहाना किया।

"अरे भाई, लौट क्यों पड़े ? जगह बहुत है···आओ हमारे साथ आकर बैठो।"

उसने हाथ मिलाया और फिर मुंह सिकोड़ कर वह धीरे-से गुर्राया, "हाँ··· और मुझे अफ़सोस है। लेकिन तुम तो जानते हो··· जीना-मरना लगा ही रहता है।"

उसने थोड़ी-बहुत पी रखी थी··· यह मुझसे छिपा न रह सका।

वह मुझे स्टोव के पास एक छोटी-सी मेज़ के पास ले आया। रेस्तराँ खचाखच भरा था। उस घड़ी वहाँ शहर की राष्ट्रीय-परिषद् के मेंबर भोजन करने आते थे। व्लास्ता की ही तरह उसके भाई का रंग भी गहरा पका हुआ था, जिसके कारण शहर के लोग उसे 'अरब' कहा करते थे, किन्तु उसके दाँत व्लास्ता से बहुत अलग थे··· सफ़ेद, स्वस्थ और चमकते हुए। जब कभी मैं उसके इन चमकते हुए दाँतों को देखता, लगता, मैं उसके सामने मिट्टी का ढेर हूँ। एक बार उसने बिल्ली का गला अपने दाँतों से काटने की शर्त लगायी थी और वह यह शर्त भी जीत गया था। टेबुल की एक कुर्सी पर उजले बालों वाला, तोंदिल आदमी अपनी सूप की प्लेट में चम्मच फेर रहा था। सामने ब्राण्डी का छोटा गिलास रखा था।

"आओ··· इधर बैठ जाओ।" यार्डा ने पैर से कुर्सी धकेलते हुए कहा, "जोसेफ़··· यह मीरेक क्लिच्का है, एलबर्ट का भाई।"

मैंने उस तोंदिल सज्जन से हाथ मिलाया। उसने धीरे से अपना नाम बुड़बुड़ाया, जिसे मैं ठीक से नहीं पकड़ सका।

"यह जोसेफ़ डायनामाइट का उस्ताद है!" यार्डा ने कहा, "लेकिन देखा जाये तो तुम दोनों ही उस्ताद हो··· जोसेफ़, उल्लू के पट्ठे! ज़रा गौर से देख···यह इण्टरनेशनल उस्ताद हैं···इण्टरनेशनल! लेकिन तुमसे बिलकुल अलग।"

यार्डी ने गिलास की बची-खुची ब्राण्डी खत्म कर डाली। "हममें से हर आदमी अपनी जगह उस्ताद है।" तोंदिल महाशय ने कहा, "तुम डींग मारने में उस्ताद हो।"

"अरे यार··· पीता चल और मुझे गालियाँ मत दे··· तेरी यही बात मुझे पसन्द नहीं है। वैसे तू अपना दोस्त है, जो मन में आये, कह सकता है। खुदा के बन्दे, ज़रा इधर··· ब्राण्डी के तीन गिलास।"

वेटर हमारी मेज़ के पास चला आया। उसने मेरा अभिवादन किया··· वह मुझे अच्छी तरह जानता है। उन दोनों के लिए वह नमकीन पोर्क और मटर लाया था। मुझे उनके साथ पीनी होगी, इस खयाल ने ही मुझे आतंकित-सा कर दिया।

"सिर्फ़ दो···" मैंने वेटर से कहा, "मैं नहीं पिऊँगा।"

"क्यों नहीं पियोगे ? तुम मेरे रिश्तेदार ठहरे··· क्यों ग़लत कहता हूँ ? घबराओ नहीं··· पिलाने लायक मेरी औक़ात है। हाँ···बाद में तुम्हें पिलानी होगी··· शर्त यही है !"

दूसरी टेबुल पर बैठे क्लर्क नीची निगाहें किये एक-दूसरे की ओर देख रहे थे। वे सब एलबर्ट और यार्डी को जानते थे। यार्डी ऊँची आवाज में बोल रहा था, अतः उन्हें मुझे पहचानने में भी देर न लगी। इस बीच वह पास की टेबुल पर बैठी एक लड़की से बातचीत करने की कोशिश करने लगा। लड़की ने काले कॉटन की फ्रॉक और स्कर्ट पहन रखी थी। वह उसकी ओर बिलकुल ध्यान नहीं दे रही थी। उसने एक बार कन-खियों से मेरी ओर देखा और दोबारा अपनी साथिन से बातचीत करने लगी। यार्डी ने अपनी कुर्सी पिछली टाँगों पर घुमा ली, लड़कियों की मेज़ पर अपनी कुहनियों को टिका लिया और काली स्कर्ट वाली लड़की से कहने लगा कि उसकी शक्ल-सूरत को देखकर उसे किसी की याद ताज़ा हो आयी है। डायनामाइट का उस्ताद बड़े तृप्त-भाव से अपने चाकू से मटर के दानों को चुन-चुनकर खा रहा था।

"क्या आप दोनों साथ काम करते हैं ?" मैंने पूछा।

"हाँ···चट्टानें फोड़ने का काम। लेकिन आपका यह रिश्तेदार कुछ खास काम नहीं करता। मेरा मतलब है··· वह सिर्फ इतना कर सकता है कि बैलगाडी के पीछे-पीछे चलता हुआ इस बात का ध्यान रखे कि कहीं कुछ नीचे तो नहीं गिर रहा। इससे ज्यादा और कुछ नहीं।"

"क्या आप अब भी डोनाराइट का इस्तेमाल करते हैं ?"

"हाँ—बराबर। आपको इस बारे में कैसे मालूम ?"

चट्टानों को डोनाराइट से उड़ाया जाता है, मुझे इसका ज्ञान बहुत पहले से है, शायद इसके बारे में वह कभी नहीं जान पायेगा। "यार्डा की कुर्सी अब दोबारा चार टाँगों पर आ गयी थी।

उसने मुंह सिकोड़ा और अपने साथी के गिलास की ब्राण्डी एक घूंट में खत्म कर डाली। फिर वह बड़े ग़मगीन भाव से मेरा चेहरा निहारने लगा।

"क्या बात है ?" मैंने पूछा, "क्या मेरा चेहरा अच्छा नहीं लगता?"

"तुम हरे दिखायी देते हो··· हरे और बदसूरत।"

"यार··· चाँद का मुखड़ा तो तुम्हारा है।" उसके साथी ने कहा।

"तुम्हारा नाक भी मुड़ी हुई है··· अपनी बहन 'चाँदी' पर गये हो। बिलकुल उसी तरह। और तुम्हारी आँखें भी टेढ़ी दिखायी देती हैं···जरा रुको। हाँ तुम्हारी बायीं आँख टेढ़ी है।"

"क्या मेरे कान ठीक हैं ?" मैंने पूछा।

"कान ? हाँ··· कानों में कोई बुराई नहीं। लेकिन तुम बहुत ढीले-ढाले नज़र आते हो··· सच, मेरी बात का बुरा मत मानना। तुम्हें हमारे

साथ चट्टानें तोड़ने का काम करना चाहिये··· एकदम बदले नज़र आओगे। लेकिन हमें तुम्हारे लिए एक छोटा-सा, नन्हा-सा पत्थर ढूंढना होगा, जिसे तुम उठा सको। क्यों भाई जोसेफ़··· कोई ऐसा पत्थर मिल सकेगा? अभी तक तो तुम अपनी अँगुलियों से सिर्फ़ शतरंज की मुहरें खिसकाते रहे हो··· क्यों, ग़लत कहता हूँ?"

शर्म से मेरा चेहरा सुर्ख़ हो गया। सारे रेस्तराँ के कान हमारी ओर लगे थे। बीच में किसी के हँसने का ठहाका सुनायी दिया।

"क्या कहने··· आजकल जैसा तुम खेलते हो।" यार्डा बोलता रहा. "तुम्हारी वजह से मैं सिर उठाकर नहीं चल सकता।"

मैं गुस्से में उबलने लगा···

मैंने सोचा उससे कहूँ कि मैंने कभी डेरी का दूध नहीं चुराया जिसकी वजह से उसे जेल की हवा खानी पड़ी थी। मैं उसकी वजह से सिर उठा-कर नहीं चल सकता, या वह मेरी वजह से? लेकिन मैंने कहा कुछ नहीं··· सिर्फ़ मेरे हाथ काँपने लगे। इस बीच यार्डा मेरी शतरंज की 'करामातों' की बखिया उधेड़ने में लगा था, और रेस्तराँ में बैठे लोग कान लगाकर उसकी बातें सुन रहे थे।

"पिछली बार तुम तीसरे रहे और उसके बाद··· फटाक! एकदम नवें! कहाँ खेले थे? हाँ याद आया डुस्सल डोर्फ में! मैं सब याद रखता हूँ! भाई मेरे, जब तुम खेल नहीं सकते, तो अपनी मिट्टी पलीद करवाने वहाँ जाते क्यों हो?"

"बकवास बन्द कर···" उसके साथी ने कहा।

"सच अगली बार मैं नहीं जाऊँगा, तुम्हें भेजूंगा।"

"जरूर··· अरे, खुदा के बन्दे···कुछ और शराब लाओ!"

मेरी सारी देह कांप रही थी। उसने मेरे गुस्से को भांप लिया होगा, किन्तु उसने उसकी क़तई परवाह नहीं की। वह जान-बूझकर मुझे छेड़ना चाहता था। मैंने एक घूंट में ब्राण्डी का गिलास खाली कर डाला। खाली गिलास मेज पर रखते हुए मैंने उसकी ओर देखा। वह भरा हुआ गिलास हाथ में उठाये आश्चर्य से मेरी ओर देख रहा था। उसका मुंह विस्मय से खुला रह गया था।

"वाह··· क्या कहने! एक घूंट में सारा गिलास! भाई लोगो, देखा आपने! यह सचमुच चेम्पियन है··· शराब पीने का इण्टरनेशनल चेम्पियन। मिरेक, एक पेग और लो। इन्हें दिखा दो कि तुम असली चेम्पियन हो।"

उसने मेरे सामने अपना गिलास बढ़ा दिया। रेस्तरां में बैठे लोग खाना छोड़कर चुपचाप प्रतीक्षा कर रहे थे, कि अब क्या होगा। मैं अपने को वश में नहीं रख सका··· धीरे से कुर्सी से उठ खड़ा हुआ और उसके हाथ से गिलास ले लिया। मुझे उसके साथी का सिर्फ़ यह वाक्य सुनायी दिया—

"यार्डा··· तुझे एक झापड़ मार दूंगा।"

और तब मैंने गिलास की पीली शराब यार्डा के चेहरे पर दे मारी।

उसने अपने हाथ से ठुड्डी और स्वेटर को साफ़ किया। फिर वह उठ खड़ा हुआ, "तुम्हें इसका मजा चखाऊंगा।"

उस क्षण उसके साथी ने घने बालों से भरे अपने हाथ से उसका कंधा पकड़ लिया।

"अबे··· बैठ जा।" उसने लापरवाही-भरे स्वर में उससे कहा।

"तुम मुझे अकेला नहीं छोड़ सकते?" मैंने रुंधे स्वर में चीखते हुए कहा, "आखिर मेरे साथ यह वहशी सलूक क्यों··· तुम्हें इससे क्या मिलेगा?"

मैं पीछे मुड़ा और तेज़ कदमों से भागते हुए रेस्तराँ के दूसरे कमरे में घुस गया। चारों तरफ़ मुझे लोगों के आश्चर्य-चकित, जिज्ञासापूर्ण, घबराहट-भरे चेहरे दिखाई दे रहे थे···उनकी आँखों में हल्का-सा परि-हास भी छिपा था। बाद में मुझे पता चला कि वे सब हमारे झगड़े को देखने के लिए कुर्सियों से उठ खड़े हुए थे।

"सूअर के बच्चे, तुझे शर्म नहीं आती!" मुझे अपने पीछे यार्डा के साथी की आवाज़ सुनायी दी थी, "आज के दिन भी तू उसे अकेला नहीं छोड़ सकता! जानता नहीं, उसकी माँ मर गयी है!"

रेस्तराँ का दूसरा कमरा 'बॉक्स' कहलाता है। एक तरह से यह स्थानीय फुटबॉल टीम का 'क्लब-रूम' है। दीवारों पर मैडल और विजयी टीमों के फोटो टँगे हैं। हर बुधवार को यहाँ शतरंज भी खेली जाती है। कहीं वे यह न समझें कि उनके शहर का निवासी ख्याति पाकर घमंडी हो गया है, मैं भी यहाँ कभी-कभी शतरंज खेलने आता हूँ। उस समय वह कमरा बिलकुल खाली था। हाव-भाव से यह जतलाने का प्रयत्न कर रहा था कि भीतर जो कुछ हुआ है, उसे उसके बारे में कुछ भी नहीं मालूम।

"मि० क्लिच्का! इस कमरे में आपको बुरी तरह सर्दी लग जायगी। हम इसे शाम से पहले गर्म नहीं करते।"

मुझे उससे आँखें मिलाने में अजीब-सी कठिनाई महसूस हो रही थी। मैंने उन लोगों की तरह अत्यधिक विनम्र और शिष्ट होने का प्रयत्न किया जो यह महसूस करते हैं कि अभी-अभी उन्होंने कोई अनुचित और अशोभ-नीय काम कर डाला है।

"अगर आपको असुविधा न हो तो मैं यहीं बैठना पसन्द करूँगा।"

"जरूर, मि० क्लिच्का···आप आराम से बैठिए! मैं आपके लिए यहाँ आग जला देता, लेकिन इस वक्त मैं अकेला हूँ···आशा है, आप माफ़ करेंगे। आप लन्च लेंगे?"

"नहीं···मैं अपने भाई का इन्तजार कर रहा हूँ, और देखिए··· भीतर जो कुछ हुआ, उसके लिए मुझे गहरा अफ़सोस है।"

"अरे जनाब···ऐसी चीजें अक्सर हो जाती हैं। आप बिलकुल फ़िक्र न करें··· ।"

उसने नेपकिन से मेज़पोश साफ किया, हालाँकि उसकी जरूरत बिलकुल नहीं थी···और फिर मेरे आगे बियर-कार्ड रख दिया। मैं चाहता था, वह जल्द-से-जल्द वहाँ से चला जाए। मैं अभी तक प्रकृतिस्थ नहीं हो पाया था। कुहनियों से कलाइयों तक मेरी नसें बुरी तरह फड़फड़ा रही थीं और मेरा दिल इस तरह धौंकनी की तरह धड़क रहा था मानो मैं अभी-अभी भागता हुआ सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आया हूँ। मेरे मस्तिष्क में हर किस्म के साहसपूर्ण फ़िकरे घुमड़ रहे थे जो मुझे यार्डा से कहने चाहिए थे। मेरी कल्पना में समूची घटना वहाँ समाप्त नहीं हुई थी, जब यार्डा के साथी ने बीच में दखल देकर यार्डा को रोक दिया था। यार्डा ने मेरे मुंह पर घूंसा मारा था और तब सहसा मेरी रगों में खून दौड़ने लगा और मैं फुर्ती से उछलकर खड़ा हो गया···जैसा अक्सर सस्ती फ़िल्मों में दिखाया जाता है···और मैंने अपने हाथ में बिअर का गिलास उठा लिया। उसके पेंदे को फोड़कर हवा में उसे भयानक हथियार की तरह घुमाते हुए मैंने उस वहशी जानवर को चुनौती दी थी, "अच्छा···अब आओ! "किन्तु कल्पना के इस पगले क्षण में भी मुझे अपने भीतर एक गहरे खोखलेपन का अहसास हो रहा था। मैं हमेशा यह छिपाने की कोशिश करता हूँ—स्वयं अपने से भी—कि मैंने अपने खोखल के इर्द-गिर्द जो आलीशान दीवार निर्मित की है, उसकी नींव कितनी कमजोर है। यार्डा ने एक धक्का देकर उसे ढहा दिया था। मैंने उसके मुंह पर शराब फेंकी थी, क्योंकि मैं समझता था कि इतने लोगों के बीच मैं अपना पलड़ा ऊँचा रख सकता हूँ। उसने मुझ पर हमला किया था क्योंकि वह जानता था कि मैं कमज़ोर हूँ। काज़ान भी—जानवर होने के बावजूद—इस तथ्य से अच्छी तरह परिचित था, इसीलिए उसने मेरी बात को इतनी आसानी से आज सुबह

अनसुना कर दिया था। अगर मैं सचमुच शक्तिशाली होता तो मैं बिलकुल दूसरे ढंग से पेश आता। अगर मैं सचमुच शक्तिशाली होता तो मुझे शायद अँगुली उठाने तक की आवश्यकता महसूस न होती क्योंकि तब यार्डा मुझे छेड़ने की जुर्रत ही नहीं कर सकता था।

और तब सहसा मुझे प्राग के अपने कमरे की याद कचोटने लगी··· जिससे मैं अब तक घृणा करता आया था। उसी क्षण मुझे एलबर्ट भीतर आता दिखाई दिया। उसके चेहरे पर चिन्ता और अफसोस का भाव झलक रहा था···शायद उसे सारी घटना का ब्यौरा मिल चुका था। उसे देखते ही मैंने कहा, "जानते हो, मैं इसी दम अपना सामान बाँधकर प्राग लौटना चाहता हूँ।"

"अरे छोड़ो—वह एकदम जाहिल आदमी है!" एलबर्ट ने घृणा से मुँह बिचकाकर कहा, "ब्लास्ता से कुछ मत कहना' वरना वह फिर तसुए बहाने लगेगी। लेकिन मैं उस बदमाश को दो-चार खरी बातें जरूर सुनाऊँगा। जानते हो उसे इस बात का गुस्सा है कि जब दूध के मामले में उसे जेल भिजवाया गया तो मैंने और रोज़ी ने उसे बचाने के लिए अँगुली भी नहीं उठाई। हरामी कहीं का···मेरे साथ वह कभी इस तरह पेश आने की जुर्रत नहीं करेगा।

एलबर्ट के साथ वह कभी इस तरह पेश नहीं आयेगा, यह मैं जानता था। लेकिन इससे मुझे कोई खास तसल्ली नहीं मिली।

१८

रोज़ी के साथ गलियारे के अन्तिम दरवाज़े को पार करके जब मैं खुले स्क्वॉयर में आया, तो सहसा मुझे लगा जैसे सब लोग उस वारदात को जानते हैं, जो मेरे साथ रेस्तराँ में घटी थी। हम स्क्वॉयर को बीच में पार करते हुए अपने घर की तरफ़ चल रहे थे। एक ज़माने में उसे 'सुखी घर' कहा जा सकता था, किन्तु अब उसके गेट के भीतर से गुज़रते हुए लग रहा था, मानो हम धीरे-धीरे किसी कब्र के पास जा रहे हों। मैं एक ऐसे आदमी की तरह घिसट रहा था जिसके हाथ-पाँव बाँध दिए गए हों। माँ की दुकान और उसके बन्द दरवाज़े को देखते ही मैंने अपनी नज़रें दूसरी तरफ़ फेर लीं। एक मर्मान्तक-सी पीड़ा मेरे भीतर उमड़ने लगी··· ऊपर उस कमरे की खिड़की थी, जहाँ वह लेटी थी। उस खिड़की को देखकर रोज़ी के होंठों पर वैसी ही अवसन्न मुस्कराहट सिमट आयी, जैसी सुबह के समय—जब वह माँ की चाभियों से खेल रही थी। उसने बताया कि अब श्रीमती होराक दुकान में बैठा करेंगी।

मैं अब उस दुकान में कभी जाने का साहस नहीं कर पाऊँगी···हर जगह मुझे माँ दिखायी देंगी।

हमारा पक्का मकान था—सीमेण्ट-ईंटों का बना हुआ। किन्तु घर के भीतर जाने वाली ड्योढ़ी सुरंग की तरह अँधेरी थी। सँकरी, छोटी-छोटी सीढ़ियाँ अँधेरे में दो बार घुमाव खाने के बाद सहसा खुले, चौड़े ज़ीने में बदल जाती थीं। रोज़ी आगे-आगे चल रही थी। मैंने चारों तरफ़ अच्छी तरह आँखें घुमाकर देखा। मुद्दत पहले एक दफ़ा मैंने सीढ़ियों के समने वाली दीवार के ऊँचे आले में माचिस की डिब्बी फेंकी थी। जब कभी मैं घर आता था, आले में उस डिब्बी को देखकर मेरे मन में एक अजीब-सा संतोष होता था जो अवश्य ही मेरे किसी अन्धविश्वास से जुड़ा था। वह मेरा निजी भेद था···एक मूर्खतापूर्ण खेल, जिसके अर्थ और नियमों को समझने का साहस मैं कभी न कर सका था। माचिस की डिब्बी अब भी वहाँ पड़ी थी···और वह हमेशा वहाँ पड़ी रहेगी, रोज़ी के पीछे खड़े होकर मैंने मन-ही मन कहा। जब वे घर की सब चीज़ें उठाकर ले जायेंगे तो भी वह वहाँ रहेगी। उसे हटाने के लिए उन्हें सीढ़ी लगानी पड़ेगी क्योंकि वह इतने ऊँचे आले में थी कि कोई भी झाड़ू वहाँ तक नहीं पहुँच सकती थी।

मैं क्या बचाकर रखना चाहता था? एक कमज़ोर नन्हे धागे से मैं अपने को किसी चीज़ से बाँध रखना चाहता था, लेकिन किससे? किस चीज़ से?

दरवाज़े पर लगा हुआ पुराने फ़ैशन का ताला। उसके पीछे अँधेरा हॉल, कोने में रखे बक्से से आती हुई बिल्लियों की गन्ध। एक छोटी-सी सीढ़ी···और रसोई के भीतर खुलता हुआ शीशे का दरवाज़ा।

दोनों बिल्लियाँ रोज़ी पर झपटीं···फिर पीछे हट गयीं और कुछ देर तक सिर्फ़ उनकी चीख-चिंघाड़ के अलावा कुछ भी सुनाई नहीं दिया।

"बस···बस···अरे क्या हो गया ?" रोज़ी उन्हें पुचकारते हुए कह रही थी, "हां···हां··· मैं तुम्हें भूली नहीं हूं।"

रोज़ी ने अभी बैग रखा भी नहीं था कि दोनों बिल्लियां चुपचाप मेज़ पर चढ़ने की कोशिश करने लगीं। मां होतीं तो चिल्लाकर कहतीं, "अरी, मरदूदो, नीचे उतरो !" मां हमेशा कहा करती थीं कि ये बिल्लियां बड़ी जालिम हैं···अगर इनका बस चले तो मुंह में घुस जाएं।

रोजी ने बैग से सलामी के कुछ टुकड़े निकालकर फ़र्श पर डाल दिए। पीटर पहले उन पर झपटा, किन्तु केट गुर्राते हुए उसके पास आयी और अपने पंजे से उस पर वार किया। उसके पेट के नीचे की खाल एक फूली हुई थैली की तरह लटक रही थी।

"क्या बच्चे देने वाली है ?" मैंने फुसफुसाते हुए रोज़ी से पूछा।

"ईश्वर भला करे ! उम्मीद है···परसों से पहले नहीं जनेगी !" मैं चारों तरफ़ देखने लगा। मैं हर चीज को एक-एक करके अपनी स्मृति में अंकित कर लेना चाहता था। अलमारी, जिसमें बर्तनों के नीचे मां हमेशा सफ़ेद कागज़ बिछाया करती थीं, खिड़की के पास वाला सफ़ेद पलंग जिस पर धूप में सुखाने के लिए नूडल्स रखे जाते थे। खंखारती आवाज़ वाला छोटा-सा रेडियो। इतवार के दिन उसके पास बैठकर मां कहानियां सुना करती थीं। बिना ओवरकोट उतारे ही मैं कौच पर बैठ गया। केट बच्चे जनेगी। रोज़ी चिलमची उठाकर बिल्लियों के लिए पानी भरने चली गयी। घर के सब छोटे-मोटे काम अपनी मन्थर गति में चल रहे थे, किन्तु मां के बिना वे कुछ वैसे ही अर्थहीन जान पड़ रहे थे, जैसे नाटक के समाप्त हो जाने के बाद परदे के पीछे होने वाला कार्य-कलाप। जिन्दगी चलती रहेगी—कहीं और। घर ठंडा पड़ा था···आग जलाने की कोई ज़रूरत भी नहीं थी।

"मिरेक, आओ !" रोज़ी ने मुझे बुलाया। उसने दरवाज़े की कुण्डी उठायी जिसके कारण मैं रात-भर इतना परेशान रहा था। हमने कमरा पार किया। जब रोज़ी ने दूसरा दरवाजा खोला, मां दिखाई दीं।

वह सिर्फ़ एक चादर पर लेटी थीं··· बिस्तर की बाकी चीजें दूसरे पलंग पर डाल दी गयी थीं। उन्होंने गहरी काली पोशाक पहन रखी थी, जिस पर सफ़ेद धब्बे पड़े थे। अपनी बन्द मुट्ठी में उन्होंने एक मुरझाया हुआ सिक्लामैन फूल पकड़ रखा था। कमरा इतना ठण्डा था कि सहसा मेरे मस्तिष्क में यह प्रश्न कौंध गया कि उन्होंने माँ को अच्छी तरह ढँका क्यों नहीं है। कमरे में एक भी मोमबत्ती नहीं जल रही थी। माँ के बिस्तर के पास एक कुर्सी रखी थी··· जैसे अक्सर मरीज़ के पलंग के पास रखी रहती है। कुर्सी पर एक फूलदान रखा था जिसमें ताजा अज़ालिया लटक रहा था। रोज़ी ने माँ के माथे को चूमा।

"देखो," उसने फुसफुसाकर कहा, "मैंने माँ के सिरहाने अलार्म-घड़ी, उनकी ऐनक और दियासलाई रख दी हैं, जैसे वह हर रात सोने से पहले अपने पास रखती थीं।"

मैं मिट्टी के पुतले-सा वहाँ खड़ा रहा। रोज़ी कमरे से बाहर चली गई थी, ताकि मैं अकेले में माँ से विदा ले सकूँ। पिछले दो दिनों में जब कभी यह विचार आता था कि एक ऐसी घड़ी आयेगी जब माँ के सामने अकेला खड़ा हूँगा, मेरा दिल पीड़ा से सिहर जाता था, और मैं उस विचार को तुरन्त अपने से परे धकेल देता था। मुझे डर था कि मैं परीक्षा की इस घड़ी को सहन नहीं कर सकूँगा। अब वह क्षण आ गया था और मैं बिल्कुल अविचलित खड़ा था।

एक क्षण के लिए मुझे लगा कि वह माँ नहीं हो सकती। वह पीला-सा चेहरा, जिसकी त्वचा हड्डियों पर खिच आयी थी, माथा, आँखें···कुछ भी अभिव्यक्त नहीं करते थे, कुछ ऐसा जिसे मैं पहचान सकूँ। होंठ लगभग ग़ायब हो गये थे, ठुड्डी आगे को निकल आयी थी, टाँगें जुराबों में लिपटी थीं, पाँव की अँगुलियों के पास एक जुराब की उधड़ी हुई सीवन दिखायी दे रही थी··· स्कर्ट से बाहर निकली हुई, अकड़ी हुई टाँगें। झिझकते हुए मैंने उनके बर्फ़-से ठण्डे हाथों को छुआ, और फिर उनके बालों को सहलाने

लगा, जो अब भी बिल्कुल काले थे। पत्थर-जैसे ठण्डे। मैं उदास नहीं हो सका··· न ही उस क्षण मैं कुछ याद कर रहा था। मैं सिर्फ़ किंकर्तव्य-विमूढ-सा खड़ा रहा था···

उस क्षण मुझे महज अजीब-सा अचम्भा हुआ था जो ज़िन्दगी में पहली बार किसी मृत व्यक्ति को छूने पर होता है और तब मुझे अप्रत्याशित-सी हैरानी हुई कि उसमें भयानक कुछ भी नहीं है।

और तब सहसा अपनी अनुभूति-शून्यता पर मैं आतंकित-सा हो उठा। आख़िर मेरी आँखें इतनी सूखी क्यों हैं? मैं कैसा आदमी हूँ? क्या ज़िन्दगी-भर मैं अपने को सिर्फ़ फुसलाता रहा था कि माँ से मेरी मुहब्बत है? मैं खिड़की के पास चला आया। उसके पीछे गैलन्टाइन का छोटा-सा काला पतीला रखा था। सिर्फ़ कुछ दिन पहले उन्होंने खाना पकाया होगा और गर्म पतीले को ठंडा करने के लिए खिड़की के पास रख दिया होगा। मुझे उस क्षण लगा मानो माँ की मृत-देह से मेरे लिए वह चीज़ कहीं अधिक वास्तविक है, जिसे उन्होंने जीवित अवस्था में छुआ था··· चलते-फिरते हाथों से··· और तब अचानक मेरे आँसू फूट पड़े।

पता नहीं, कितनी देर तक मैं उनके सामने बैठा रहा था, क्या कुछ उनसे कहता रहा। शराब पीकर जैसे आदमी बेसुध हो जाता है, मैं भी उस समय वैसा ही था। मैं अब कुछ-कुछ समझने लगा हूँ कि क्यों कुछ औरतें किसी अजनबी के शव पर रोने जाती हैं। न जाने उस समय मैंने माँ से किन-किन चीज़ों के लिए क्षमा माँगी··· ज़ुज़ा के फूलों के लिए, उस आरामकुर्सी के लिए जिसे मैं उनके लिए कभी नहीं खरीद सका, पतझड़ में उनके पास न आने के लिए जब उन्होंने मुझे बुलाया था··· मैंने उनके खामोश हाथों को छुआ, आँखों को चूमा। अब मेरे भीतर कोई कुण्ठा नहीं रह गयी थी। फिर कुछ देर बाद मैं खामोश हो गया···न उन्हें दोबारा छू सका, न उनसे कुछ अधिक कह सका। कुछ क्षण पहले शोक का जो असाधारण नशा मुझ पर छा गया था वह धीरे-धीरे खत्म होने लगा। पलंग के छोर पर बैठे-बैठे मेरी देह अकड़ गयी थी··· समय का अन्दाज़

धुंधला पड़ गया था। उनके पास इस तरह बैठे रहना, बिना बोले बैठे रहना··· इससे मुझे अजीब-सी शान्ति मिलने लगी। लगा जैसे एक कोमल-सी सतह ऊपर उठ आयी हो, जिसमें कोने, काँटे, खाइयाँ कुछ भी नहीं हैं, सिर्फ़ आँखें मूँदकर बैठे रहना, यही काफ़ी है।

मैं उठ खड़ा हुआ। दोपहर के समय कुछ देर के लिये सूरज का जो चेहरा दिखायी दिया था, वह अब बर्फ़ के बादलों में छिप गया था। नेशनल क्लब हाउस के सामने दो लड़कियाँ—जो अलेन्का-सी दिखायी देती थीं—सिनेमा के विज्ञापनों को देख रही थीं। अब माँ कभी मेरे साथ खिड़की पर कुहनी टिकाकर, बाहर नहीं देखेंगी··· उनकी आँखों में चौराहे पर गुज़रता हर आदमी एक कहानी में बदल जाता था। अब कभी हम एक साथ स्क्वॉयर पार करके सिनेमा नहीं जायेंगे···वह बड़े गर्व से मेरी बाँह-में-बाँह डाले चला करती थीं— मैं घर आया हूँ, इस पर उन्हें घमंड होता था, हालांकि कई बार सकुचाकर मैं अपनी बाँह खींच लेता था···अब कभी ऐसा नहीं होगा। उनके लिए अब हर चीज़ समाप्त हो गयी। किन्तु उनके जाने के बाद क्या मेरे लिए भी कोई चीज़ हमेशा के लिए समाप्त नहीं हो गयी? उस क्षण खिड़की के पास सहसा मुझे इसका बोध हुआ। मैं दुनिया में कहीं भी घूमता रहता था, उनके अस्तित्व को भी अक्सर भुला देता था, किन्तु जब तक वह यहाँ रहती थीं, मैं अपनी अस्वाभाविक ज़िन्दगी इस सुरक्षित भावना के साथ ढोता रहता था कि मैं किसी भी समय उससे बच-कर निकल सकता हूँ। जाहोरी और माँ का घर वह दरवाज़ा था जिसे हमेशा ख़तरे की घड़ी में इस्तेमाल किया जा सकता था। मेरा असली घर यहाँ था, इस कमरे में···प्राग में नहीं। माँ की मृत्यु ने इस पर हमेशा के लिए ताला लगा दिया था। जब तक वह जीवित थीं, एक उम्मीद थी कि मैं दोबारा साधारण लोगों की उस ज़िन्दगी में लौट सकूँगा, जिससे मैं खुद उगा था। लेकिन अब··· अब मैं लौटकर कहाँ जाऊँगा? मेरे लिए अब क्या बचा है? एक दिन मैं अगर जाहोरी लौटूँ भी··· तो उससे अपना नाता नहीं जोड़ पाऊँगा। मैं कहीं किसी जगह से भी नाता नहीं जोड़ सकूँगा। माँ की ज़िन्दगी समाप्त हो गयी, मेरी ज़िन्दगी अभी चलेगी,

जारी रहेगी। मेरी आँखों के आगे नीरस वर्षों का एक सिलसिला घूम गया जो मुझे जीने थे··· जो मेरी जिन्दगी में बाकी बचे थे। वे वर्ष मुझे उतने ही पराये और मुतैले जान पड़े जैसे होटल के कमरे जहाँ मुझे अक्सर रात काटने के लिए ठहरना पड़ता था। ट्रेनों, हवाईजहाजों का सफ़र, एक शहर से दूसरा शहर, एक टूर्नामिण्ट से दूसरा टूर्नामिण्ट। अपने में अकेला मैं बराबर लड़खड़ाता रहूँगा— एक कभी न खत्म होने वाले दायरे में— अखबार का दफ़्तर, पाँच रेस्तराँ और तीन नाइट-क्लबें। वहाँ मैं खुश-मिज़ाज, बदमिज़ाज, जीवन्त और थके हुए दोस्तों के घेरे में रहूँगा···वे सब एक-दूसरे से बहुत भिन्न हैं, किन्तु सबमें कमोबेश वही कमजोरियाँ छिपी हैं, जो मुझमें हैं। अपनी किताब लिखते हुए मुझे फिर बीहड़ अकेलापन पकड़ लेगा और उससे बचने के लिए मैं अपने को किताबों, संगीत, शराब में डुबोता रहूँगा ताकि कुछ देर के लिए अपने को धोखा दे सकूँ कि मैं जीवित हूँ। और मेरी रातें···जुजा के साथ और उसकी देह···और उत्तेजना उतर जाने के बाद एक कसैली, घिनौनी-सी अनुभूति।

"क्या सचमुच ऐसा ही होगा?" एक झुरझुरी-सी मेरी देह में दौड़ गयी, "हमेशा क्या ऐसा ही रहेगा? क्या अब मेरे जीवन में कोई परिवर्तन नहीं होने वाला? और क्या यह अनिवार्य है?" मेरा भविष्य मेरे आगे ऐसा ही निर्जीव पड़ा था जैसी माँ की दयनीय देह। उस क्षण खिड़की के पास खड़े हुए मैं जान गया कि वह कौन-सी चीज़ थी जो पिछले चन्द महीनों से एक दुःस्वप्न की तरह मुझे कचोट रही थी, मुझे लगा जैसे मेरे भीतर कोई चेतावनी की घण्टी बजा रहा है और मैं उसे सुन सकता था।

फिर रसोई में आग जलने की चिर-चिर सुनायी दी। मेज़ पर कॉफ़ी के चार प्याले रखे थे। बिल्लियाँ भट्ठी के पास बैठी हुई आग सेंक रही थीं।

"एलबर्ट आता होगा," रोज़ी ने कहा "मैंने सोचा, एक बार हम सबको मिलकर माँ के घर कॉफ़ी पीनी चाहिये··· आखिरी बार।" उसने मेरे हाथ में कॉफ़ी पीसने की मशीन पकड़ा दी। मैं ही अक्सर कॉफ़ी पीसता था। जब मैंने टिन से कॉफ़ी के दाने निकालकर हथेली में रखे,

केट तुरन्त नीचे कूद पड़ी। वह हमेशा इस ताक में रहती थी कि कोई दाना नीचे गिरे ताकि वह अपने हिस्से के दो दाने पा सके। माँ हँसी-हँसी में इसे बिल्ली का 'टेक्स' कहा करती थीं। मैंने मुस्कराते हुए उस चुड़ैल को टेक्स अदा किया। कुछ देर बाद एलबर्ट आ गया और हम मेज़ के इर्द-गिर्द बैठ गये। हालाँकि किसी ने यह नहीं कहा कि चौथा कप माँ के लिए है, किन्तु माँ की कुर्सी पर कोई नहीं बैठा। किन्तु फिर भी इस 'आयोजन' की व्यर्थता और उदासी किसी से छिपी न रह सकी और हम थकान के बोझ में डूबे हुए चुपचाप कॉफ़ी पीने लगे। मेरे प्याले के पास चाँदी का एक चम्मच रखा था जिस पर OETKAR विज्ञापन के शब्द खुदे थे। हमारे घर में सिर्फ़ यही एक चाँदी का चम्मच था। जब मैं छोटा था, माँ बड़ी उत्सुकता से आटे के पैकेटों के लेबिल जमा करती थीं··· सौ लेबिलों के प्रीमियम-स्वरूप उन्हें यह चम्मच मिला था। मैंने सबकी आँख बचाकर वह चम्मच अपनी जेब में रख लिया।

आखिर एलबर्ट ने खामोशी तोड़ी। उसने बताया कि नेशनल क्लब के वेटर फुक्स ने माँ का एपार्टमेंट लेने के लिए आवेदन-पत्र भेजा है। उसके तीन बच्चे हैं और वह अपने माता-पिता को भी अपने साथ रखना चाहता है। केट मेरी गोद में आकर बैठ गयी थी और मैं उसे सहलाता हुआ सोच रहा कि न जाने यह आदमी फुक्स कैसा होगा। मुझे लग रहा था कि वह अभी से हमारे बीच चुपचाप चला आया है और माँ की खाली कुर्सी पर आकर बैठ गया है और तब मुझे महसूस हुआ कि मातम मनाने का यह खेल हम व्यर्थ में ही खेल रहे हैं क्योंकि अब उस घर में हमारी मौजूदगी कोई माने नहीं रखती।

सिर्फ़ हमारी बिल्ली केट ही ऐसी थी जिसकी पुरानी दिनचर्या में कोई अन्तर नहीं आया···अंगीठी में आग धधक रही थी, पुराने दिनों की तरह··· उसने कॉफ़ी के दाने हज़म कर लिये थे, और अब वह संतुष्ट भाव से लेटी थी और धीरे-धीरे ऊँघने लगी थी। बच्चों से भरा उसका पेट मेरी जाँघों को गरमा रहा था।

और··· इस तरह मैंने उस घर से विदा ली थी।

१९

उस दिन से तीन सप्ताह गुजर चुके हैं जब माँ के कमरे में मुझे अपने बारे में और अपने भविष्य के बारे में एक स्पष्ट झलक मिली थी। मुझे अच्छी तरह याद है कि उसे देखकर मैं किस तरह भयाक्रांत हो उठा था। मैं उस 'भय' से अपरिचित नहीं हूँ···जब शतरंज का खिलाड़ी देखता है कि समय उसके हाथों से निकला जा रहा है, तो वह कुछ उसी तरह बदहवास हो जाता है। यह अपने को सुरक्षित रखने की बदहवासी है···अपने को किसी तरह बचाने की आकांक्षा। यही कारण था कि माँ को क़ब्र में लिटाने के एक घंटे बाद ही मैंने ट्रेन पकड़ ली थी ताकि मैं जल्द-से-जल्द प्राग पहुँच जाऊँ···अपने घर में अपने शतरंज के बोर्ड के आगे, जहाँ मेरी ज़िन्दगी के सफ़ेद और काले मैदान बिखरे हैं, दोबारा से असफलता और

निराशा के उस कुटिल खेल में जुट जाऊँ जो शायद एक विनाशकारी विस्फोटन के साथ समाप्त हो जायेगा···लेकिन उससे पहले मैं एक अन्तिम चाल खेलना चाहता था। अवश्य ही अपनी जिन्दगी को बचाने की कोई-न-कोई अन्तिम चाल कहीं मौजूद होगी··· मैं उस घड़ी एक फ़ैसले से सब-कुछ पूरी तरह बदल देना चाहता था। मैं चाहता था··· आज भी चाहता हूँ। और उसके बावजूद सब-कुछ वैसा ही रहा है, जैसे पहले था। कुछ भी नहीं बदला।

हमेशा की तरह मैं अखबार के दफ़्तर जाता हूँ। डॉ॰ रैखल की तुत-लाहट को सुनते हुए अब भी मेरे भीतर एक हल्की-सी झुरझुरी फैल जाती है। श्रीमती फ़ियाला मेरे लिए कॉफ़ी बनाती हैं···उनकी उम्र बढ़ती जा रही है, लेकिन अब भी ऑफ़िस की एक स्वामिभक्त कर्मचारी की तरह वह श्रद्धायुक्त आँखों से मुझे देखती हैं। यूजिन ने एक बार फिर साहस बटोरकर मुझे तालवोरोवनीक मैच की पोज़ीशन दिखाई है और मुझे लगता है कि उसकी चाल में सचमुच अप्रत्याशित संभावनाएँ छिपी हैं। दोपहर के समय···हमेशा की तरह आप मुझे 'मोरावाँ' रेस्तराँ की लम्बी टेबुल के सामने देख सकते हैं···जोसेफ़ के साथ, जो कॉफ़ी के बाद वोद्का पीने का लोभ संवरण नहीं कर पाता···हौंज़ा रोहान के साथ, जिसने एक कॉमेडी की रूपरेखा तैयार की थी और बाद में उसे फाड़ दिया। वह अब भी बराबर अपने पर हँसता रहता है। सब-कुछ वैसा ही है जैसा पहले था···या लगभग वैसा ही। मैंने जो संकल्प किए थे, उनमें से सिर्फ़ एक को पूरा कर सका हूँ···मैं और जुज़ा अलग हो गए हैं।

अलग होने का एक भी असली कारण मैंने उसे नहीं बताया। उसके गुलाब के फूलों के कारण मुझे जो पीड़ा हुई थी, (उन्हें सचमुच माँ की अर्थी पर रखा गया था) उसकी कल्पना वह शायद कभी न कर सकेगी। मैंने उसी की भाषा और अन्दाज़ में उससे कहा था, "हमें यह किस्सा खत्म करना चाहिये··· ठीक है न?"

उसे चेखव की वह कहानी बहुत अच्छी लगती है, जो इन्हीं शब्दों से खत्म हुई थी। इन शब्दों को अपनी व्यावहारिक शब्दावली में बदलकर मुस्कराते हुए उसने पूछा था, "क्या उस नयी लड़की की फोटो दिखा सकते हो ?" गुसलखाने से अपना टूथ-ब्रश उठाते हुए वह क्षण-भर के लिए भावुक हो उठी थी। उसने मुझसे कहा कि अपने ढंग से वह मुझे चाहती थी। मैं जानता था वह सच कह रही है। अपने ढंग से वह अनेक पुरुषों को चाहती है। हम खुशी-खुशी अलग हुए थे··· उसे इसमें कोई शक नहीं था कि अलग होने के बाद भी हम एक-दूसरे के अच्छे दोस्त रहेंगे। मैं भी सहमत हुआ था··· मैं उससे झूठ बोला था, इसके लिए मुझे कोई शर्म नहीं है।

मैंने इन नोट्स के अन्तिम खंडों को अभी-अभी दोबारा पढ़ा है। पढ़ते समय मुझे कुछ ऐसा आभास हुआ मानो इन्हें किसी ऐसे व्यक्ति ने लिखा है, जो पराजित हो चुका है··· जिसने अपनी नियति से समझौता कर लिया है। किन्तु यदि यह सच है कि मैंने समझौता कर लिया है कि बहुत-सी चीज़ों के साथ मुझे समझौता करना पड़ा है (हर चीज़ के साथ नहीं) तो क्या अनिवार्यतः इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मैंने हमेशा के लिए हथियार डाल दिये हैं··· क्या मेरे लिए अब उस पुराने, बहुत पुराने प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है, 'मुझे क्या करना चाहिये ?'

वह उत्तर मुझे उस समय मिला था जब बदहवासी की हालत में मैं ज़ाहोरी छोड़कर भाग खड़ा हुआ था। बरसों पहले मार्था की तरह मैं अपने पीछे सब-कुछ डुबोकर फ़ैक्टरी का मजदूर बनने की कल्पना करने लगा। मैंने यह भी सोचा था कि यूनिवर्सिटी में दाखिल होकर मैं अब भी शायद डॉक्टर या वैज्ञानिक बन सकता हूँ। किन्तु फिर भी मैंने इन सपनों को अपने से दूर ठेल दिया। मैं ज़िन्दगी के चालीस वर्ष पार कर चुका हूँ। मेरी उम्र चालीस वर्ष है, मैं शतरंज-टूर्नामेण्ट का खिलाड़ी हूँ, इसके

सवा मैं कभी कुछ और नहीं बन सकूँगा। हर शाम हजारों सिर शतरंज-बोर्ड पर झुके रहते हैं। जिन्दगी के अन्तिम दिनों तक मैं···एक पंगु, अपाहिज प्राणी—उन लोगों से ईर्ष्या करता रहूँगा जो, घड़ी-दो घड़ी मन बहलाने के लिए उस खेल को खेलते हैं, जो मेरा व्यवसाय है, जिसे मैंने प्रोफ़ेशन के तौर पर चुना है। किन्तु यदि इसी तरह अपने असाधारण व्यवसाय के प्रति मेरी आत्मा में सन्देह और शंकाएँ उठती रहीं, तो एक दिन क्या यह नौबत नहीं आ पहुँचेगी कि मैं एक ऐसा चेम्पियन बन जाऊँगा जो शतरज भी नहीं खेल सकता··· दुनिया का सबसे निकम्मा, निरर्थक प्राणी? मैं मजदूर नहीं बनूँगा, न डॉक्टर ही बन सकूँगा, जाहोरी का बचपन भी मेरे लिए—माँ की तरह— हमेशा के लिए खो चुका है। मैंने इस स्थिति से समझौता कर लिया है··· समझौता करना पड़ा है। सामान्य, साधारण लोगों की अर्थपूर्ण जिन्दगी एक चमत्कारपूर्ण ढंग से मुझसे भिन्न है और मैं उनके बीच कभी दोबारा नहीं लौट सकूँगा। किन्तु यदि मैं सौ वर्ष तक भी जिन्दा रहूँ, तो भी उनमें लौटने की आकांक्षा मेरे दिल में बराबर सुलगती रहेगी। वह मेरे लिए उतनी ही अनिवार्य है, जैसे आलोक और हवा, वह मुझे हमेशा अपनी ओर खींचती रहेगी···एक स्वप्न की तरह। प्यार की तरह··· क्या यह कुछ कम है? मेरे पास सिर्फ़ यही है। यह मेरी आत्मा है। इसके रहते मेरे लिए एकमात्र आशा बनी रहेगी कि मैं कभी उन लोगों की सतह पर नहीं उतरूँगा जो भीतर से बिलकुल उदासीन हो गये हैं, जो अपने से और अपने भीतर बिलकुल आत्म-संतुष्ट हैं···मेरे जैसे विकृत अस्तित्व वाले लोग जो जोंकों की तरह जिन्दगी की खुरदुरी खाल पर बसेरा करते हैं···

क्या यह कम है?

मेरे लिए यही सब-कुछ है।

-

आजकल मैं अपनी कॉफ़ी को हमेशा माँ के चाँदी के चम्मच से हिलाता हूँ। फिर मैं शतरंज-बोर्ड पर काठ की मुहरें सजाऊँगा—मेरी अमूर्त लड़ाइयों की पैदल-सेना और उनके बादशाहों की मुहरें। देर रात तक मैं शतरंज की बाज़ी पर दिमाग़ लड़ाता रहूँगा। मेरे लिए यह ज़रूरी है। खेलना मेरा काम है। एक दिन जब काम खेल बन जायेगा, तब शायद मुझमें और दुनिया के बीच शान्ति क़ायम हो जायेगी।